॥ ओ३म् ॥

तत्सत्परब्रह्मणेनमः ।

अथ वैशेषिकदर्शनभाषानुवाद

अर्थात् डा० भवानीलाल

पदार्थ निरूपण

"उत्तरार्द्ध"

महामुनि कणाद प्रणीत ॥

उत्तिष्ठत जाग्रतप्राप्य वरान्निबोधत क्षुरस्यधारा-
निशितादुरत्यया दुर्गम्पथस्तत्कवयो
वदन्ति ॥ कठोपनिषद् ॥

श्री पं० सूर्यदत्त शर्मा मख्याधिष्ठाता गुरुकुल
विद्यालय

Printe by
Shan

प्रथमा
वृति ५००

ओ३म
गुरु विरजानन्द दण्डी
संदर्भ पुस्तकालय
दयानंद महिला महाविद्यालय
कुरुक्षेत्र
वर्गीकरण नम्बर .....
पु. परिग्रहण क्रमांक 2534

॥ ओ३म् ॥

आर्य्य ज्ञानोदय ग्रंथमाला के नियम ॥

(१) उद्देश्यः — वैदिक धर्म्म शिक्षार्थ व आर्ष ग्रंथों के प्रचारार्थ, प्राचीन व नवीन ग्रंथों को सर्व साधारण के— उपकारार्थ प्रकाशित करना है—

(२) इस के प्रत्येक अंक का मूल्य ।) आना, वार्षिक १।) रु० विद्यार्थियों से अर्द्ध मूल्य लिया जाता है।

(३) यह ग्रन्थमाला ३२ पेजपर छपकर द्विमासिक प्रकाशित होता है।

विज्ञप्ति

१—पाठकों को विदित ही है कि यह कोई समाचारपत्र नहीं है और ग्रंथों के विचार पूर्वक प्रकाशित करने में समय अधिक लग जाना सम्भव है अतः ग्रन्थमाला ३, ४ भाग के छपने में विलम्ब हुआ है सो क्षमा प्रार्थना है।

२— ग्रन्थमाला के ५, ६ ठवें भाग में व्याख्यान सम्बन्धी एक अत्युत्तम ग्रन्थ भेजा जायगा।

३— जिन सज्जनों ने ग्रं० भा० का मूल्य नहीं भेजा है वे कृपया शीघ्र मूल्य भेज देवें या ग्रं० भा० का आगामी भाग वी० पी० भेजा जायगा सो उसे सहर्ष स्वीकार करेंगे। जिन को वी० पी० लेना अस्वीकार हो तो प्राप्त कुल अंकों का ही मूल्य भेज कर आगे न लेने की सूचना अवश्य कर देवें।

भवदीय—
कामदत्त शर्मा मैनेजर
"आर्यज्ञानोदय ग्रन्थमाला"
होशंगाबाद C. P.

॥ ओ३म् ॥

तत्सत्परब्रह्मणे नमः ॥

अथ वैशेषिक दर्शन—भाषानुवाद

"उत्तरार्द्ध"

ईश्वर प्रार्थना ॥

ओ३म् यो भूतञ्च भव्यञ्च सर्वं यश्चाधि तिष्ठति । स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥ अथर्व० । १० । २३ । ४ । १ ॥

—०—

पूर्वार्द्ध में " कर्म का निरूपण " किया गया है अब उस के आगे कर्म के भेद को कहते हैं ।

(१३१) कर्म के भेद—उत्क्षेपण मवक्षेपण माकुञ्चनं प्रसारणं गमन मिति कर्माणि । १ । १ । ७ ॥

अर्थ—कर्म पांच प्रकार का होता है-उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन ।

(१३२) उत्क्षेपण का निरूपण— ऊर्ध्वं देश संयोग हेतुरुत्क्षेपणम् ॥ त० सं० ॥

अर्थ—ऊपर के स्थान के संयोग का कारण अर्थात् ऊपर को उठना फेंकना आदि उत्क्षेपण कहाता है ।

(१३३) अवक्षेपण का निरूपण—अधो देश संयोग हेतु रव क्षेपणम् ॥ त० सं० ॥

अर्थ—नीचे के स्थान के संयोग का कारण अर्थात् नीचे को गिरना फेंकना आदि अवक्षेपण कहाता है ।

(१३४) आकुञ्चन का निरूपण—शरीर सन्निकृष्ट संयोग हेतु राकुञ्चनम् ॥ त० सं० ॥

अर्थ—देह के समीप में संयोग होने का कारण अर्थात् सिकोड़ना आकुञ्चन कहाता है ।

(१३५) प्रसारण का निरूपण—शरीर विप्रकृष्ट संयोग हेतुः प्रसारणम् ॥ त० सं० ॥

अर्थ—शरीर के दूर संयोग होने का कारण अर्थात् फैलाना प्रसारण कहाता है ।

(१३६) गमन का निरूपण—अन्यत्सर्वं गमनम् ॥ त० सं० ॥

अर्थ—इस से भिन्न चलने को गमन कहते हैं ।

(१३७) उत्क्षेपण कर्म होने का हेतु—आत्म संयोग प्रयत्नाभ्यां हस्ते कर्म । ५ । १ । १ ॥

अर्थ—आत्मा और मन के संयोग तथा प्रयत्न से हाथ में उठने का कर्म होता है ।

(१३८) मूसल के उठने का हेतु—तथा हस्त संयोगाच्च मुशले कर्म ॥ ५ । १ । २ ॥

अर्थ—जैसे आत्मा और मन के संयोग से हाथ में प्रयत्न होता है एवं मूसल के बोझ से मूसल में ऊपर उठने का कर्म होता है ।

(१३९) मूसल और हाथ के बारम्बार उठने का हेतु—अभिघातान्मुशल संयोगाद्धस्तेकर्मे॥५।१।५॥

अर्थ—प्रथम मूसल के भारीपन से मूसल उठता है पर मूसल हाथ के सहित जो बारम्बार उठता है उसका कारण वेग है। अतः मूसल के बारम्बार उठने का हेतु आत्मा मन हस्तादि का संयोग नहीं है।

(१४०) मूसल के अधःपतन होने का कारण—संयोगा भावे गुरुत्वात् पतनम्। ५।१।७॥

अर्थ—मूसल वेग से ऊपर उठता है पर हस्त संयोग के अभाव व भारीपन होने से नीचे गिरता है।

(१४१) अचेतनावस्था में इन्द्रियों के हिलने का कारण—यत्नाभावे प्रसुप्तस्य चलनम्॥ तृणे कर्म वायु संयोगात्॥ ५।१।१३।१४॥

अर्थ—मनुष्य के सोने व मरने तथा अचेत होने की अवस्था में जो इन्द्रियें कम्पायमान होती हैं उसका कारण वायु का संयोग है।

सामान्य का वर्णन॥ ४॥

(१४२) सामान्य का निरूपण—नित्य मेक मनेकानु गतं सामान्यम्॥ त० सं०॥

अर्थ—एक और अनेक में नित्य रहने वाला सामान्य है अर्थात् किसी पदार्थ की जो जाति है वह सामान्य कहाती है।

(१४३) सामान्य के भेद—परम परञ्चेति द्विविधं सामान्यम्॥ त० सं०॥

सामान्य दो प्रकार का है पर और अपर ।

(१४४) पर का निरूपण—अधिक देश वृ० त्तित्वम् परत्वम् ॥ सि० मु० ॥

अर्थ–अधिक देश में रहने वाला पर कहाता है । जैसे वृक्षों में वृक्षत्व जाति ॥

(१४५) अपर का निरूपण— अल्प देश वृत्तित्वम् परत्वम् ॥ सि० मु० ॥

अर्थ–अल्पदेश में रहने वाला अपर कहाता है । जैसे वृक्षों में आम्रत्वादि ।

(१४६) जाति का निरूपण—समान प्रसवात्मिका जातिः । न्याय द० । २ । २ । १३८ ।

अर्थ–द्रव्यों में भेद होते हुये भी समान उत्पत्ति को जाति कहते हैं ।

(१४७) परापर जाति का विशेष विवरण-वृक्ष,पशु,आदि कहने से सब प्रकार के वृक्षों व पशुओं का बोध हो जाता है इसको पर जाति कहते हैं और वृक्षों में आम्रादि तथा पशुओं में गवादि अपर जाति है क्योंकि आम्र व गौ कहने से आम्र तथा गौ मात्र का बोध होता है अन्य का नहीं इसी को अपर कहते हैं ॥

(१४८)जाति बाधक कारण—व्यक्तेरभेदस्तुल्यत्वं सङ्करोऽथानवस्थितिः । रूप हानि रसम्बन्धो जाति बाधक संग्रहः॥सी०मू०॥

व्यक्ति का भेद न होना अर्थात् एक ही व्यक्ति हो जैसे काल, दिशा, आकाश, एक जाति नहीं किन्तु एक २ व्यक्ति हैं । तुल्य व्यक्ति भी जाति नहीं जैसे घट और कलस को

दो जाति नहीं किन्तु एक ही है नाममात्र का भेद है। संकीर्णत्व भी जाति नहीं जैसे भूतत्व मूर्त्तत्व एक जाति नहीं। अनवस्था होना, रूप की हानि, सम्बन्ध न होना, आदि भी कोई पृथक् जाति नहीं हैं।

(१४९) सामान्य और विशेष के भेद— आम्र सर्व आम्रों में सामान्य और वृक्षों से पृथक् होने में विशेष एवं गौ सब गऊओं में सामान्य और पशुओं से पृथक् होने में विशेष है इसी को सामान्य विशेष कहते हैं यह सामान्य विशेष सापेक्ष हैं आम्रत्वादि की अपेक्षा से वृक्षत्व सामान्यहै, और वृक्षत्व की अपेक्षा से आम्रत्व विशेष है। पर वृक्षत्व भी पृथिवीत्व की अपेक्षा से विशेष है, और आम्रत्व भी अपनी दूसरी जातियों की अपेक्षा से सामान्य है। जिसकी कोई दूसरी जाति न हो वह केवल विशेष ही होता है, जैसे घटत्वादि और जिसकी व्यापक जाति कोई न हो वह केवल सामान्य ही होता है। ऐसी जाति केवल सत्ता है। क्योंकि वह सर्व द्रव्यों सर्व गुणों और सर्व कर्मों में होती है। सत्ता वह है (जिससे सत् सत् प्रतीत होती है, अर्थात् द्रव्य सत् है, गुण सत् है, कर्म सत् है) और सब (द्रव्यत्वादि) जातियां सामान्य विशेष हैं।

॥ विशेष का वर्णन ॥५॥

(१५०) विशेष का निरूपण—नित्य द्रव्य वृत्तयो व्यावर्त्तका विशेषाः ॥ त० सं० ॥

नित्य द्रव्यों में रहने वाला और उन द्रव्यों को आपस में पृथक् २ करने वाला विशेष कहाता है जैसे अश्व से पृथक् गौ विशेष जाति है क्योंकि अश्व से गौ का धर्म

पृथक् है एवं गौ में भी नाना प्रकार की जो गौएं हैं वह विशेष तथा मनुष्यों में अनेक वर्ण अनेक स्वरूप अनेक गुणों के होने से विशेष कहे जाते हैं। अर्थात् एक वस्तु से दूसरे के भेद को बताने वाला विशेष है। जैसे गौ अश्व अजादिकों में पशुत्व धर्म सामान्य है क्योंकि गौ भी पशु है अश्व भी पशु है और अजादि भी पशु हैं परन्तु इन में रूप रंग आदि अवयवों का भेद होने से गौ से भिन्न अश्व और गौ अश्वादि से भिन्न अजा (बकरी) आदि हैं एवं पक्षियों में काग कोयल हंस आदि भी पक्षित्व धर्म से सब सामान्य हैं किन्तु रूप रंग आदि के भेद से काग से भिन्न कोयल और कोयल से भिन्न हंस आदि हैं। यह भेदक भाव विना किसी एक पदार्थ के माने सिद्ध नहीं होसकता अतएव सिद्ध होता है कि भेद भाव का बतलाने वाला सब पदार्थों से भिन्न एक विशेष पदार्थ है जो कि प्रत्येक नित्य द्रव्यों में रहता है और अनित्य द्रव्यों तथा गुण कर्मादिकों में आश्रय के भेद से माना जाता है। इस विशेष पदार्थ का वर्णन इसी दर्शन ने किया है अतः इस शास्त्र की (अधिकृत्य कृते ग्रन्थे अ० । ४ । ३ । ८५ ।) सूत्रानुसार वैशेषिक दर्शन कहा है।

(१५१) सामान्य और विशेष होने के कारण

सामान्यं विशेष इति बुद्ध्यपेक्षम् १।२।३।

अर्थ—बुद्धि की अपेक्षा से सामान्य और विशेष होते हैं क्योंकि जो पदार्थ बुद्धि की अपेक्षा से सामान्य कहा गया है वही अन्य बुद्धि की अपेक्षा से विशेष भी हो जाता है। जैसे पशुत्व धर्म गौ, अश्व, अजादि में सामान्य है परन्तु रूप रंग आदि के भेद से गौ अश्वादिकों को भिन्न बतलाने में विशेष भी है अतः सिद्ध है कि सामान्य और विशेष बुद्ध्यपेक्ष हैं।

(१५२) सत्ता का निरूपण— सदिति यतो द्रव्यगुण कर्मसु सा सत्ता । १ ।२।७।

अर्थ—जिससे द्रव्य गुण कर्मों में सत है इस प्रकार जो जाना जाय वह सत्ता कहाती है अर्थात् द्रव्य, गुण, कर्मों में "होना" जो वस्तु है वही सत्ता है जैसे द्रव्य है गुण है कर्म है। (प्रश्न) यदि द्रव्यादि में "होना" ही वस्तु सत्ता है तो द्रव्यादिकों से भिन्न क्यों माना जाय ? द्रव्यादिकों को ही क्यों न मानलें ?

उत्तर—द्रव्य गुण कर्मभ्योऽर्थान्तरं सत्ता ॥ गुण कर्मसु च भावात्न कर्म न गुणः ॥१ । २ । ९ । ९ ॥ अर्थ—द्रव्य गुण और कर्म से सत्ता " होना " अन्य वस्तु है क्योंकि द्रव्य गुण कर्म इन तीनों में होने से सत्ता द्रव्य गुण कर्म रूप नहीं हो सकती यदि सत्ता द्रव्य रूप ही होती तो गुणकर्म में न होती अतः सिद्ध है कि सत्ता एक अलग पदार्थ है जो कि सब में रहती है और (सामान्य विशेषा भावेन च) १।२।१० ॥ अर्थ—सामान्य तथा विशेष के न होने से भी सत्ता द्रव्य गुण कर्मों से भिन्न वस्तु है ।

(२५३) सत्ता का एकत्व निरूपण— सदित लिङ्गा विशेषाद्विशेष लिङ्गाभावाच्चै को भावः ।१।२।१७।

अर्थ—सत् (है) यह लिङ्ग के अविशेष से और विशेष लिङ्ग के अभाव से सत्ता एक है जैसे द्रव्यों में द्रव्यत्व, गुणों में गुणत्व, और कर्मों में कर्मत्व एक है एवं सब द्रव्यों गुणों और कर्मों में सत्ता एक है क्योंकि द्रव्य है गुण है कर्म है इन में (है) यह क्रिया एक समान है इस में विशेष कर कुछ चिन्ह नहीं है।

(१५४) सत्ता का सामान्यत्व वर्णन— भावोनुवृत्तेरेव हेतुत्वात्सामान्यमेव ॥ १ । २ । ४ ॥

अर्थ—यह सत्ता अनुवृत्ति के ही कारणत्व से सामान्य ही है। अर्थात् सब पदार्थ किसी न किसी की अपेक्षा से सामान्य और विशेष होते हैं परन्तु सत्ता ही एक ऐसा पदार्थ है जो कि सब में रहता है अतः सामान्य ही है। विशेष नहीं।

(१५५) द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्व का निरूपण—अनेक द्रव्यवत्त्वेन द्रव्यत्वमुक्तम्। गुणेषु भावाद् गुणत्व मुक्तम्। कर्मसु भावात्कर्मत्व मुक्तम्॥१।२।११।१३।१५॥

अर्थ—द्रव्य गुण कर्मों में समवाय सम्बन्धसे जो जाति रहती है उसका नाम द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्व, है। अर्थात् द्रव्यों में द्रव्यपन और गुणों में रहने वाला गुणपन व कर्मों में कर्म पन जाति ही जो स्वस्वभावों को बतलाती है वही द्रव्यत्वादि जाति कहलाती है।

(१५६) द्रव्यत्व गुणत्व कर्मत्व जाति का पृथक्त्व विवरण—सामान्य विशेषाभावेन च। १। २। १२। १४। १६॥

अर्थ—द्रव्य गुण कर्मों से द्रव्यत्व गुणत्व कर्मत्व जाति यदि भिन्न न हो तो तीनों में सामान्य व विशेष भी होने चाहिये परन्तु ऐसा नहीं है इस से द्रव्यों से द्रव्यत्व, गुणों से गुणत्व और कर्मों से कर्मत्व जाति पृथक् ही है।

(१५७) द्रव्यात्वादिकों का सामान्य और विशेष विवरण—द्रव्यत्वं गुणत्वं कर्मत्वं च सामान्यानि विशेषाश्च। १। २। ५॥

अर्थ—द्रव्यत्व, गुणत्व और कर्मत्व ये तीनों सामान्य और विशेष भी हैं अर्थात् पृथिवीत्व की अपेक्षा से सा-

मान्य और सत्ता की अपेक्षा से विशेष होते हैं। एवं गुणत्व कर्मत्व को भी जानना चाहिये। परन्तुः—(अन्यत्रान्त्येभ्यो विशेषेभ्यः। १। २। ६) यह सर्वत्र के लिये नहीं। जैसे द्रव्यत्व पृथ्वीत्व की अपेक्षा से सामान्य और सत्ता की अपेक्षा से विशेष है तो भी पृथिवीत्व में घटत्व पटत्वादि जो सामान्य व विशेष जाति हैं वो द्रव्यत्वादि की अपेक्षा से विशेष ही हैं।

समवाय का वर्णन ॥६॥

(१५८) समवाय का निरूपण— इहेदमिति यतः कार्य्य कारणयोः स समवायः १। २। २५॥

अर्थ—कार्य्य और कारण में यह व्यवहार जिस सम्बन्ध से हो कि इसमें यह है वह सम्बन्ध समवाय कहाता है। जैसे बीज रूप कारण में वृक्षरूप कार्य्य व वृक्षरूप कार्य्य में बीज रूप कारण जिस सम्बन्ध से स्थित है उस सम्बन्ध को समवाय कहते हैं। एवं कारिकावली में भी कहाहै यथा—घटादीनां कपालादौ द्रव्येषु गुणकर्मणोः। तेषु जातेश्च सम्बन्धः समवायः प्रकीर्तितः॥ अर्थ—कपालादि में घटादिकों का द्रव्यों में गुण कर्म और उनमें जाति का जो सम्बन्ध है वह समवाय है अर्थात् अवयव अवयवी, जाति व्यक्ति, गुण गुणी, क्रिया और कर्त्ता का जो सम्बन्ध है उसको समवाय कहते हैं। (प्रश्न) समवाय पदार्थ द्रव्य गुण में ही किसी एक पदार्थ को क्यों न माना जाय? (उत्तर) द्रव्यत्वगुणत्वप्रतिषेधो भावेनाख्यातः। १।२।२६॥ अर्थ—द्रव्यत्व और गुणत्व का निषेध भाव के साथ कह दिया गया है अर्थात्—जैसे द्रव्य गुण कर्मों से सत्ता पृथक् वस्तु मानी गई है एवं समवाय भी द्रव्य और गुण से भिन्न पदार्थ नित्य और एक है।

अभाव का वर्णन ॥७॥

(१५९) **अभाव के भेद**— अभावश्चतुर्विधः—प्राग-भावः प्रध्वंसाभावोऽत्यन्ताभावोऽन्योन्याभावश्चेति ॥त०सं०॥

अर्थ—अभाव चार प्रकार का है १ प्रागभाव २ प्रध्वंसाभाव ३ अत्यन्ताभाव ४ अन्योन्याभाव ॥

(१६०) **प्रागभाव का निरूपण**— अनादिः सान्तः प्रागभाव उत्पत्तेः पूर्वं कार्यस्य ॥ त० सं० ॥

अर्थ—कार्य की उत्पत्ति से पूर्व जो उसका अभाव है वह प्रागभाव कहाता है। जैसे घट पटादि पदार्थ उत्पत्ति से पूर्व नहीं थे यह अनादि सान्त है ॥

(१६१) **प्रध्वंसाभाव का निरूपण**—सादि-रनन्तः प्रध्वंसः उत्पत्यनन्तरं कार्यस्य ॥ त० सं० ॥

अर्थ—कार्य के उत्पत्ति के बाद जो अभाव है उसको प्रध्वंसाभाव कहते हैं जैसा घड़ा उत्पन्न होकर नाश को प्राप्त हो जाय। यह अभावसादि अनन्त है।

(१६२) **अत्यन्ताभाव का निरूपण**- त्रैकालिक संसर्गावच्छिन्न प्रतियोगिताकोऽत्यन्ताभावः ॥ त० सं० ॥

अर्थ—भूत भविष्यत् वर्त्तमान् तीनों कालों में जो न रहे उसको अत्यन्ताभाव कहते हैं। जैसे भूतल में घट पटादि नहीं हैं। यह अभाव अनादि अनन्त है।

(१६३) **अन्योन्याभाव का निरूपण**—तादात्म्य सम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताकोऽन्योन्याभावः ॥त० सं०॥

अर्थ—दो पदार्थों में एक दूसरे का जो अभाव है उस को अन्योन्याभाव कहते हैं जैसे यह घड़ा वस्त्र नहीं है

वस्त्र घड़ा नहीं अर्थात् घड़े में वस्त्र का और वस्त्र में घड़े का अभाव है इसी को अन्योन्याभाव कहते हैं। कोई २ सामयिकाभाव भी मानते हैं॥

(१६४) **सामयिकाभाव का निरूपण**— समय विशेष में जिसका अभाव हो उसको सामयिकाभाव कहते हैं। जैसे किसी समय घट वाले स्थान में घट का अभाव हो जाना सामयिकाभाव है।

(१६५) **संसर्गाभाव का निरूपण**— प्रागभाव-स्तथाध्वंसोऽप्यत्यन्ताभाव एव च। एवंत्रैविध्य मापन्नः संसर्गाभाव इष्यते॥

अर्थ-प्रागभाव प्रध्वंसाभाव और अत्यन्ताभाव इन तीनों को संसर्गाभाव भी कहते हैं।

पदार्थों के विशेष गुणों का वर्णन॥ ८॥

किस किस पदार्थ के क्या २ विशेष गुण हैं सो लिखतेहैं:-

(१६६) **वायु के विशेष गुण**— स्पर्शादयो-ऽष्टौ वेगाख्यः संस्कारो मरुतो गुणाः।

अर्थ—स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, वियोग, परत्व, अपरत्व, और वेगाख्य संस्कार ये ९ वायु के गुण हैं॥

(१६७) **अग्नि के विशेष गुण**—स्पर्शाद्य-ष्टौ रूपवेगौ द्रवत्वं तेजसो गुणाः।

अर्थ—स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, वियोग, परत्व, अपरत्व, रूप, वेग, और द्रवत्व ये ११ अग्नि के गुण हैं।

(१६८) **जल के विशेष गुण**— स्पर्शादयोऽष्टौ

वेगश्च द्रवत्वं च गुरुत्वकम्। रूपं रसस्तथा स्नेहो वारिण्येते चतुर्दश ॥

अर्थ—स्पर्श, संख्या, परिणाम, पृथक्त्व, संयोग, वियोग, परत्व, अपरत्व, वेग, द्रवत्व, गुरुत्व, रूप, रस, और स्नेह ये १४ जल के गुण हैं।

(१६९) पृथिवी के विशेष गुण—स्नेह हीना गन्धयुताः क्षितावेते चतुर्दश।

अर्थ—स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, वियोग, परत्व, अपरत्व, वेग, द्रवत्व, गुरुत्व, रूप, रस और गन्ध ये १४ पृथिवी के गुण हैं।

(१७०) आत्मा के विशेष गुण— बुद्ध्यादि षट्कं संख्यादि पञ्चकं भावना तथा। धर्माऽधर्मौ गुणा एते आत्मनःस्युश्चतुर्दश ॥

अर्थ—बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, वियोग, और भावना तथा धर्म, अधर्म ये १४ आत्मा (जीवात्मा) के गुण हैं।

(१७१) दिशा और आकाश के विशेषगुण—संख्यादि पंचकं कालदिशोः शब्दश्च ते च खे।

अर्थ—संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, वियोग ये ५ दिशा और काल के गुण हैं। तथा संख्यादि ५ और शब्द ये ६ आकाश के गुण हैं।

(१७२) ईश्वर के गुण—संख्यादि पञ्चकं बुद्धिरिच्छा यत्नोऽपिचेश्वरे।

अर्थ—संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, वियोग, बुद्धि, इच्छा, और यत्न ये ८ ईश्वर के गुण हैं।

(१७३) मन के गुण—परत्वाऽपरत्वे संख्यादि पञ्च वेगश्च मान से ।

अर्थ—परत्व, अपरत्व, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, सयोग, वियोग, और वेग ये ८ मन के गुण हैं ।

—०—

पदार्थों का साधर्म्य वर्णन ॥६॥

(१७४) साधर्म्य का निरूपण—समानो धर्मो येषां ते स धर्माणः तेषां भावः साधर्म्यं । सि० मु० ॥

अर्थ—समान धर्म है जिनका वे सधर्मी कहलाते हैं सधर्मियों के भाव को साधर्म्य कहते हैं ।

(१७५) द्रव्य, गुण, कर्म का साधर्म्य वर्णन—सदऽनित्यं द्रव्यवत्कार्यं कारणं सामान्य विशेष वदिति द्रव्य गुण कर्मणामऽविशेषः ॥ १ । १ । ८ ॥

अर्थ—सत्, अनित्य, द्रव्य के तुल्य, कार्य कारण; और किसी से सामान्य व विशेषता वाला होना यह द्रव्य, गुण और कर्मों का साधर्म्य (समान धर्म) है ।

(१७६) द्रव्यादिकों का कारण एक होने से सामान्यपन—द्रव्य गुण कर्मणां द्रव्यं कारणं सामान्यम् । १ । १ । १८ ॥

अर्थ—द्रव्यों, गुणों और कर्मों का द्रव्य ही कारण होता है अतः यही तीनों का साधर्म्य है ।

(१७७) कार्य के एक होने से सामान्यपन—द्रव्याणां द्रव्यं कार्यं सामान्यम् । १ । १ । २३ ।

अर्थ—जैसे द्रव्यों का कारण द्रव्य होता है एवं द्रव्यों

का कार्य भी द्रव्य ही होता है यह तीनों का समान धर्म है यथा घट पट का कार्य भी द्रव्य है।

(१७८) द्रव्य, गुण मात्र का साधर्म्य वर्णन—

द्रव्य गुणयोः स्वजातीयारम्भकत्वं साधर्म्यम्। द्रव्याणि द्रव्यान्तरमारभन्ते गुणाश्च गुणान्तरम्॥ १।१।९।१०

अर्थ—द्रव्यों और गुणों में स्वसजातियों को बनाने वाला होना साधर्म्य है। अर्थात् द्रव्य अन्य द्रव्य को और गुण अन्य गुण को अपने में से बनाते हैं सो यही दोनों का समान धर्म है।

प्रश्न—द्रव्यों से जैसे द्रव्य बनते हैं तो क्या कर्मों से कर्म भी बनते हैं? (उत्तर) कर्म कर्म साध्यं न विद्यते॥ १।१।११॥ अर्थ—कर्म से कर्मान्तर नहीं बनता है। क्योंकि कर्म उत्पन्न होते ही विभाग उत्पन्न करता है। (प्रश्न) गेंद को धक्का देने से वह ऊपर नीचे को जो उठता व गिरता है तो क्या बारम्बार उठना व गिरना कर्म कर्म से उत्पन्न नहीं हुआ? (उत्तर) नहीं क्योंकि गेंद के बारम्बार उठने गिरने का कारण वेगाख्य संस्कार है वह संस्कार गुणों में है अतः वेग से कर्म उत्पन्न हुआ न कि कर्म से अन्य कर्म।

(१७९) गुण के समवायि कारणत्व से साधर्म्य—

तथा गुणः।१।१।१९॥

अर्थ—जिस प्रकार द्रव्य गुण कर्मों का द्रव्य समवायि कारण है तदनुसार तीनों का गुण भी समवायि कारण है अतः गुण कारणत्व से इन तीनों का साधर्म्य है जैसे द्रव्यों का संयोग गुण कार्य द्रव्य का कारण है एवं कार्यरूपादि गुणों का भी कारण रूपादि गुण है। तथा

गुरुत्वादि गुण उत्क्षेपणादि कर्मों के कारण हैं।

(१८०) **संयोगविभाग और वेगों का कर्म के साथ साधर्म्य**—संयोग विभाग वेगानां कर्म समानम् ।१।१।२७॥

अर्थ—संयोग विभाग और वेगों का एक ही कर्म कारण है यह तीनों का समान है। जैसे धनुष् और संयुक्त बाण में कर्म ही दोनों के संयोग का कारण है एवं धनुष् से बाण के वियोग का भी कारण कर्म है क्योंकि विना कर्म के बाण धनुष् से पृथक् नहीं हो सक्ता और बाण में वेग के उत्पत्ति का भी कारण कर्म है क्योंकि यदि धनुष् से बाण के छोड़ने में कर्म न किया जाता तो बाण में वेग उत्पन्न न होता। संयोग विभाग और वेगों का कारण कर्म होने से तीनों का कर्म के साथ साधर्म्य है। (प्रश्न) द्रव्यों का कारण कर्म क्यों नहीं? (उत्तर) न द्रव्याणां कर्म। व्यतिरेकात् ।१।१।२१।२२॥ अर्थ—कर्म द्रव्यों का कारण नहीं होता क्योंकि कर्म तो द्रव्य के प्रारम्भ करने वाले संयोग को उत्पन्न करके स्वयं नाश को प्राप्त हो जाता है अर्थात् जब कर्म की निवृत्ति हो जाती है तब द्रव्य की उत्पत्ति होती है अतः कर्म द्रव्यों का कारण नहीं। जिस प्रकार द्रव्यों का द्रव्य कार्य और गुणों का गुण कार्य है तदनुसार कर्मों का कार्य्य कर्म हो सकता है वा नहीं? अर्थात् जैसे द्रव्यों से द्रव्य और गुणों से गुण उत्पन्न होते हैं वैसे ही कर्मों से कर्म क्यों नहीं उत्पन्न होते॥ (उत्तर) गुण वै धर्म्यान्न कर्मणां कर्म १।१।२४॥ गुण के वैधर्म्य से कर्मों का कारण कर्म नहीं होता जैसे द्रव्य और गुण स्वजातीय द्रव्य गुण को उत्पन्न करते हैं

इस प्रकार कर्म कर्मों को उत्पन्न नहीं करता। अतः द्रव्य गुण से कर्म में यह वैधर्म्य है।

(१८१) द्रव्यों के कार्य्य जो गुण हैं उन का निरूपण—द्वित्व प्रभृतयः संख्या पृथक्त्व संयोग विभागाश्च। १। १। २५॥

अर्थ—द्वित्वादि संख्यायें पृथक्त्वादि और संयोग विभाग ये दो द्रव्य वा बहुत द्रव्यों के संयोग से उत्पन्न होते हैं अतः ये द्रव्यों के कार्य्य हैं। (प्रश्न) पूर्व सूत्रानुसार जिस प्रकार द्वित्वादि द्रव्यों का कार्य्य है वैसा कर्म क्यों नहीं? (उत्तर) असमवायात्सामान्य कार्यं कर्म न विद्यते। १।१।२६॥

अर्थ—समवाय सम्बन्ध के न होने से द्रव्यों के कार्य सामान्य में कर्म नहीं है। क्योंकि यदि कर्म सर्वत्र एक ही होते तो एक मनुष्य के जाने में जहां यह प्रयोग होता है कि यह मनुष्य जाता है वहाँ पर अनेक मनुष्यों के जाने पर भी यही प्रयोग होना चाहिये कि मनुष्य जाता है पर ऐसा न होने का यही कारण है कि प्रत्येक मनुष्यों में कर्म पृथक् २ रहता है इससे अनेक मनुष्यों के जाने पर अनेक मनुष्य जाते हैं ऐसा कहा जाता है अतः सिद्ध है कि कर्म सर्वत्र पृथक् २ हैं एक नहीं।

(१८२) संयोगों का कार्य—संयोगानां द्रव्यम्। १।१।२७॥

अर्थ—संयोगों का कार्य द्रव्य है अर्थात् बहुतों के संयोग से कार्य द्रव्य बनते हैं जैसे पृथिवी जल अग्नि आदि पञ्चभूतों के संयोग से शरीर रूपी कार्य बन जाता है।

(१८३) रूपों का कार्य—रूपाणां रूपम्। १।१।२८॥

अर्थ—रूपों का रूप कार्य सामान्य है एवं रस गन्धादिकों का रस गन्धादि भी कार्य सामान्य है॥

(१८४) **गुणों का एक कर्म कार्य**- गुरुत्व प्रयत्न संयोगानामुत्क्षेपणम् ।१।१।२९॥

अर्थ–गुरुत्व, प्रयत्न और संयोग इनका उत्क्षेपण नाम कर्म कार्य सामान्य है ।

(१८५) **कर्मों का कार्य**–संयोग विभागाश्च कर्मणाम् । १।१।३०॥

अर्थ–संयोग विभाग और वेग कर्मों का कार्य सामान्य है क्योंकि कर्म से ही संयोग विभाग और वेग उत्पन्न होते हैं जैसे देवदत्त जब चलता है तब संयोग विभाग और वेग उसके चलने की क्रिया से उत्पन्न हो जाते हैं । (प्रश्न) संयोग विभागादि ही यदि कर्म के कार्य हैं तो क्या द्रव्य और कर्म नहीं (उत्तर) कारणसामान्ये द्रव्य कर्मणां कर्माऽकारण मुक्तम् । १ । १ । ३१ ॥

अर्थ–कारण सामान्य में द्रव्य कर्मों का कारण न होना कर्म को कहा है ॥

पदार्थों का वैधर्म्य वर्णन ॥१०॥

(१८६) **द्रव्य कार्य कारण का नाशक नहीं**— न द्रव्यं कार्यं कारणं च बधति । १।१।१२ ॥

अर्थ–द्रव्य अपने कार्य और कारण को नाश नहीं करता जैसे पुत्ररूपी द्रव्य अपने माता पितारूपी कारण को और स्वपुत्र रूपी कार्य को नाश नहीं करता । परन्तुः -

(१८७) **गुण दोनों प्रकार का है**– उभयथा गुणाः १ । १ । १३ ॥

अर्थ–गुण उभय पक्ष का है अर्थात् अपने कार्य व

कारण का नाशक है और नहीं भी है जैसे शब्द एक गुण है उस शब्द को उसका कार्यरूप दूसरा शब्द नाश कर देता है और अन्त के शब्द को उसका कारण रूप वही अन्त से पूर्व का शब्द नष्ट कर देता है।

(१८८) **कर्म कार्य का नाशक है**—कार्य विरोधि कर्म । १ । १ । १४ ॥

अर्थ—कार्य का नाश करने वाला कर्म है अर्थात् कर्म ही अपने कार्य का नाश कर देता है जैसे कोई मनुष्य किसी से मिला तो पूर्व कर्मानुसार मेल हुआ और मिलकर जब आगे चला तब दूसरे कर्म से पूर्वोक्त संयोग रूपी कर्म का नाश हो गया।

कार्य्य कारण भाव वर्णन ॥११॥

(१८९) **कारण के अभाव से कार्य का अभाव**—कारणाभावात्कार्याऽभावः ॥ १ । २ । १ ।

अर्थ—कारण के अभाव से कार्य्य का अभाव होता है जैसे पृथिवी व जल के एकत्रित होने पर भी बीज के अभाव से अङ्कुर का अभाव होता है यहां बीज कारण और अङ्कुर कार्य्य है। अतः सिद्ध है कि बिना कारण के कार्य्य नहीं होसकता। परन्तुः—

(१९०) **कार्य्य के अभाव से कारण का अभाव न होना**—न तु कार्या भावात्कारणाभावः १ । २ । २ ॥

अर्थ—कार्य के अभाव से कारण का अभाव नहीं होता अर्थात् जिस प्रकार कारण के बिना कार्य नहीं हो सकता एवं कार्य के बिना कारण भी न हो यह नियम नहीं जैसे तन्तुओं के अभाव से वस्त्र और मृत्तिका के अभाव से घट

तो अवश्य उत्पन्न नहीं होगा किन्तु वस्त्रों के अभाव से तन्तुओं का और घटों के अभाव से मृत्तिका का अभाव होना सम्भव नहीं।

(१९१) **कार्य्य का निरूपण**—कार्यं प्रागभाव प्रतियोगि ॥ त० सं० ॥

अर्थ—जो प्रथम नहीं था उसके विरुद्ध को कार्य कहते हैं जैसे घट के प्रथम मृत्तिका थी उस समय में घट का अभाव था जब कुम्हार ने मृत्तिका को पानी में सान कर दण्ड चक्रादि से घट बनाया तो यह पूर्व के विरुद्ध होने से कार्य हुआ ॥

(१९२) **कारण का निरूपण**—कार्य नियत पूर्व वृत्ति कारणम् । त० सं० ॥

अर्थ—किसी कार्य में अवश्य पहिले रहने वाला कारण कहाता है। जैसे घट रूप कार्य में मृत्तिका रूप कारण ॥

(१९३) **कारण के भेद**—कारणं त्रिविधं समवाय्य-समवायि निमित्त भेदात्। त० सं० ॥

अर्थ—कारण तीन प्रकार का है समवायि असमवायि और निमित्ति।

(१९४) **समवायि कारण का निरूपण**—यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायि कारणम्। यथा तन्तवः पटस्य। पटश्च स्वगत रूपादेः। त० सं० ॥

अर्थ—जिसमें समवाय सम्बन्ध से कार्य उत्पन्न होता है वह समवायि कारण है जैसे सूत कपड़े का समवायि कारण है क्योंकि सूत से कपड़ा बनता है और कपड़ा अपने रूप का समवायि कारण है।

(१९५) असमवायि कारण का निरूपण— कार्येण कारणेन वा सहैकस्मिन्नर्थे समवेतत्वे सति यत्कारणम् तदसमवायि कारणम् । यथा तन्तु संयोगः पटस्य, तन्तु रूपं पट रूपस्य ॥ त० सं० ॥

अर्थ—कार्य वा कारण के साथ एक अर्थ में समवाय सम्बन्ध से रहने पर जो कारण है वह असमवायि कारण कहाता है जैसे कार्य वस्त्र के साथ तन्तुओं का संयोग वस्त्र रूप कार्य की सिद्धि के लिये तन्तुओं में नित्य सम्बन्ध से रहता है इसके तन्तुओं का एक दूसरे से मिलना वस्त्र का असमवायि कारण हुआ और तन्तुओं का रूप वस्त्र के रूप का असमवायि कारण हुआ ॥

(१९६) निमित्त कारण का निरूपण— तदुभय भिन्न कारणं निमित्त कारणम् ॥ त० सं० ॥

अर्थ—समवायि और असमवायि दो कारणों से भिन्न कारण को निमित्त कारण कहते हैं जैसे तुरी आदि पटका दंड आदि घट का निमित्त कारण है ॥

(१९७) कारण गुण पूर्वक कार्य गुण होना— कारण गुण पूर्वकः कार्य गुणो दृष्टः ।२।१।२४॥

अर्थ—कार्य का गुण कारण के गुण पूर्वक होते हैं ऐसा देखा जाता है जैसे शुक्ल नीलपीतादि गुण वाली मृत्तिका से शुक्ल नील पीत गुणवाला घट होता है अतः सिद्ध है कि जैसा कारण होगा तदनुसार ही कार्य में गुण होंगे ॥

(१९८) कारण के होने से कार्य का होना— कारणभावात् कार्य भावः ।४।१।३॥

अर्थ—कारण के भाव से कार्य का भाव माना जाता है अर्थात् बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता ।

लिंगिकज्ञान का विवरण ॥१२॥

(१९९) **लिङ्ग का निरूपण**— हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेक मात्रितं लिंगम् ॥ सां० । १ । १२४ ॥

अर्थ–जो हेतु वाला, अनित्य, अव्यापि, सक्रिय, अनेक, और आश्रयवान् हो वह लिंग है ।

(२००) **लिंग के भेद**—संयोगि समवाय्येकार्थ समवायि विरोधि च ॥ वै० । ३ । १ । ९ ॥

अर्थ–लिंग चार प्रकार का होता है संयोगि समवायि एकार्थ समवायि और विरोधी ॥

(२०१) **संयोक लिंग का निरूपण**— संयोग से जो जाना जाय उसको संयोगि लिंग कहते हैं जैसे सुयोग्य शिष्य के देखने से योग्य गुरु का ज्ञान ॥

(२०२) **समवायलिंग का निरूपण**— समवाय सम्बन्ध से जो जाना जाय उसको समवायिलिंग कहते हैं जैसे स्पर्श से वायु का रूप से तेज का गन्ध से पृथिवी का ज्ञान होता है ।

(२०३) **एकार्थ समवायिलिङ्ग का निरूपण**-कार्यं कार्यान्तरस्य ॥ ३।१।१० ॥

अर्थ–एकार्थ समवाय से जो जाना जाय उसको एकार्थ समवायिलिङ्ग कहते हैं जैसे एक कार्य अन्य कार्य का चिन्ह होता है रूप एक कार्य गुण घट में समवाय सम्बन्ध से स्थित है उसमें अन्य कार्य स्पर्शगुण जो जाना जाता है वह एकार्थ समवायिलिंग है ॥

(२०४) विरोधिलिंग का निरूपण—विरोध्य भूतं भूतस्य । भूतमभूतस्य ॥ भूतं भूतस्य ॥ ३।१।११।१२।१३ ॥

अर्थ—विरोधि भाव से जो जाना जाय उसको विरोधि लिंग कहते हैं जैसे नहीं हुई वर्षा होने वाली वर्षा का विरोधि चिन्ह है । वर्त्तमान् वर्षा हुई वर्षा का विरोधि चिन्ह है । वर्त्तमान् स्थित सर्प वर्त्तमान् नकुल का विरोधी लिंग है ॥

(२०५) व्याप्ति का निरूपण— यत्रधूमस्तत्राग्निरिति साहचर्य नियमो व्याप्ति ॥ त० सं० ॥

अर्थ—जहां धुवां है वहां अग्नि अवश्य है यह नियम से साथ रहना व्याप्ति कहाती है ।

(२०६) व्याप्ति के भेद—व्याप्ति तीन प्रकार की है—अन्वयव्यतिरेकि व्याप्ति, केवलान्वयिव्याप्ति, केवल व्यतिरेकि व्याप्ति ।

(२०७) अन्वयव्यतिरेकि व्याप्ति का निरूपण—अन्वयेन व्यतिरेकेण च व्याप्ति मदन्वय व्यतिरेकि यथा वह्नौसाध्ये धूमवत्त्वम् । यत्र धूमस्तत्राग्निरित्यन्वय व्याप्ति । यत्र वह्निर्नास्ति तत्र धूमोविनास्ति यथा महाह्रद इति व्यतिरेक व्याप्तिः ॥ त० सं० ॥

अर्थ—अन्वय और व्यतिरेक से व्याप्तिवान् अन्वय व्यतिरेकि व्याप्ति कहाती है ॥ जैसे अग्नि की सिद्धि में धूमवान् होना । कारण और कार्य की व्याप्ति अन्वय व्याप्ति होती है, जैसे जहां धुवां है वहां अग्नि है इसके विरुद्ध व्यतिरेक व्याप्ति है, जैसे जहां धुवां नहीं वहां अग्नि भी नहीं होती, जैसे बड़ा तालाब ।

(२०८) केवलान्वयि व्याप्ति का निरूपण— अन्वयमात्र व्याप्तिकं केवलान्वयि । यथा घटोऽभिधेयः प्रमेयत्वात् पटवत् । अत्र प्रमेयत्वा भिधेयत्वयोर्व्यतिरेक व्याप्तिर्नास्ति सर्वस्यैव प्रमेयत्वादभिधेयत्वाच्च ॥त० स० ॥

अर्थ—जहां केवल अन्वय ही में व्याप्ति है वहां केवलान्वयि व्याप्ति होती है जैसे घट नाम वाला पदार्थ है, नापने के योग्य होने से वस्त्र के समान । यहां अभिधेयत्व और प्रमेयत्व की व्यतिरेक व्याप्ति नहीं है क्योंकि संसार के सभी पदार्थ प्रमेयत्व व अभिधेयत्व वाले हैं ।

(२०९) केवल व्यतिरेक व्याप्तिका निरूपण— व्यतिरेक मात्र व्याप्तिकं केवल व्यतिरेक । यथा पृथिवी तरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्वात् । यदि तरेभ्यो न भिद्यते न तद्गन्धवत् यथा जलम् । न चेयं तथा । तस्मान्न तथेति । अत्र यद्गन्धवत् तदितरभिन्न मित्यन्वय दृष्टान्तो नास्ति, पृथिवी मात्रस्यपक्षत्वात् ॥ ता० सं० ॥

अर्थः—केवल व्यतिरेक में जिसकी व्याप्ति हो उसे केवल व्यतिरेक कहते हैं । जैसे पृथिवी—जल तेज इत्यादिकों से अलग है गन्ध वाली होने से । जो और पदार्थों से भिन्न नहीं होता वह सुगन्ध वाला भी नहीं, जैसे पानी और यह पृथिवी तो वैसी नहीं है, इससे वैसा नहीं । यहां जो गन्ध वाला है वह दूसरों से अलग है ऐसा अन्वय वाला दृष्टान्त नहीं है क्योंकि केवल पृथिवी ही पक्ष है ।

(२१०) पक्ष के भेद— पक्ष तीन प्रकार का है—पक्ष, सपक्ष और विपक्ष ।

(२११) पक्ष का निरूपण— सन्दिग्धसाध्यवान्

2089

पक्षः साध्यं यथा धूमवत्त्वे हेतौ पर्वतः ॥ त० स० ॥

अर्थ—साध्य का जहां सन्देह हो उसको पक्ष कहते हैं जैसे धूमवान् हेतु में पर्वत ।

(२१२) सपक्ष का निरूपण—निश्चित साध्यवान् सपक्षः । यथा तत्रैव महानसम् ॥ त० सं० ॥

अर्थ—जहां साध्यका निश्चय हो वह सपक्ष है । जैसे उसी उदाहरण में पाकशाला ।

(२१३) विपक्ष का निरूपण—निश्चित साध्याभाव वान् विपक्षः । यथा तत्रैव महाह्रदः ॥ त० स० ॥

अर्थ– जहां साध्य का अभाव निश्चित् हो वह विपक्ष है । जैसे उसी स्थान में बड़ा तालाब ।

सत हेतुओं को कहके अब असत हेतुओं को कहते हैं ॥

(२१४) हेत्वाभास का निरूपण—अप्रसिद्धोऽनपदेशः । ३ । १ । १५ । असन्सन्दिग्धश्चानपदेशः । ३ । १ । १६ ।

अर्थ—जिस में व्याप्ति आदि प्रसिद्धि न पाई जावे और असिद्धि तथा संदेह युक्त जो हो उसको हेत्वाभास कहते हैं ।

(२१५) हेत्वाभास के भेद—इस शास्त्र में हेत्वाभास दो प्रकार का माना है असिद्ध और सन्दिग्ध किन्तु न्याय में हेत्वाभास पांच प्रकार का माना है । सव्यभिचार, विरुद्ध, प्रकरणसम, साध्यसम और कालातीत ।

(२१६) असिद्ध हेत्वाभास का निरूपण—यस्माद्विषाणी तस्मादश्वः । ३ । १ । १७ ।

2534

अर्थ—असिद्ध हेतु को असिद्ध हेत्वाभास कहते हैं जैसे यह हेतु दिया जाय कि सींगों वाला होने से घोड़ा है यह हेतु असिद्ध है क्योंकि सींग वाला अश्व होता ही नहीं।

(२१७) सन्दिग्ध हेत्वाभास का निरूपण—

सन्दिग्ध हेतु को सन्दिग्ध हेत्वाभास कहते हैं जैसे (यस्माद्विषाणी तस्माद्गौरित्यनैकान्तिकस्योदाहरणम् ३। १। १८) सींग वाला होने से ही बैल है यह अनैकान्तिक (सन्दिग्ध) हेतु का उदाहरण है क्योंकि सींग जब कि बैल से अतिरिक्त हिरण, बकरे, हस्ती आदि बहुत से पशुओं को होता है तो बैल की सिद्धि में "सींग वाला होना ही बैल है" यह हेतु कोई मुख्य नहीं अर्थात् सन्देह युक्त है अतः इसको सन्दिग्ध हेत्वाभास कहते हैं। न्यायदर्शनोक्त हेत्वाभास का निरूपण पुस्तक बढ़ जाने के भय से नहीं लिखा गया पाठकवर्ग उक्तग्रन्थ में ही देख लेवें।

(२१८) लक्षण का निरूपण—लक्ष्यतेयेन तल्लक्षणम्॥

अर्थ—जिससे लक्ष जाना जाय उसको लक्षण कहते हैं जैसे आंख से रूप नासिका से गन्ध जाना जाता है।

(२१९) लक्षण के दोष—

लक्षण में तीन प्रकार के दोष होते हैं अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असम्भव।

(२२०) अव्याप्ति दोष का निरूपण—

किसी एक लक्ष्य में लक्षण का न घटना अव्याप्ति दोष कहाता है जैसे कपिला जो हो वही गौ है ऐसा लक्षण करने से कृष्ण शुक्ल, गौ में अव्याप्ति दोष हो जायगा।

(२२१) अतिव्याप्ति दोष का निरूपण—

लक्ष्य से अन्यत्र लक्षण का घट जाना अतिव्याप्ति दोष

कहाता है। जैसे खुर पूंछ सींग वाला जो हो वही गौ है ऐसा भी लक्षण करने से अतिव्याप्ति दोष आजाता है क्योंकि उत्तम लक्षणानुसार भैंस भी होती है।

(२२२) असम्भव दोष का निरूपण—

लक्ष्यमात्र में लक्षण का सर्वथा न घटना असम्भव दोष कहाता है। जैसे एक खुर वाला जो हो वह गौ है ऐसा कहने से असम्भव दोष आजाता है क्योंकि एक खुर वाला गौ देखा नहीं जाता॥

दर्शनस्थ प्रश्नोत्तर विषयः॥ १३॥

(२२३) **प्रश्न**—आचार्य ने स्व शास्त्र का उद्देश्य मोक्ष होना बतलाया है अतः प्रथम प्रश्न यह ही है कि मोक्ष किसको कहते हैं। (उत्तर) तदभावे संयोगाभावोऽप्रादुर्भावश्च मोक्षः॥ वै० ५।२।१८॥ तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः॥न्या०। १।१।२२॥ अर्थ—कर्म के न होने में संयोग का अभाव और जन्म का न होना मोक्ष है। अर्थात् दुःखों के अत्यन्त निवृत्ति को मोक्ष कहते हैं इसी को मुक्ति भी कहते हैं॥

(२२४) **प्रश्न**—मोक्ष की प्राप्ति के लिये ही शास्त्र का उद्देश्य क्यों? (उत्तर) दुःखों की अत्यन्त निवृति करना ही मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य है यथा प्रमाण—अथ त्रिविधि दुःखात्यन्त निवृति रत्यन्त पुरुषार्थः॥सांख्य१।१।१। अतः परम कारुणिक कणाद मुनि ने मनुष्य जीवनोद्देश्य के प्राप्त्यर्थ ही मोक्ष का होना स्व शास्त्र का मुख्योद्देश्य बतलाया है।

(२२५) **प्रश्न**—मोक्ष वा मुक्ति किस से प्राप्त होती है? (उत्तर) तत्वज्ञानान्निःश्रेयसम्। १।१।१४॥ प्रथम कहा जा

चुका है कि पदार्थों के साधर्म्य व वैधर्म्य तत्वज्ञान से मोक्ष होता है एवं सांख्य शास्त्र में भी लिखा है (ज्ञानान्मुक्तिः । ३ । १) ज्ञान से मुक्ति होती है ॥

(२२६) **प्रश्न**—तत्वज्ञान होते ही मोक्ष होता है वा कुछ पीछे ? (उत्तर) दुःख जन्म प्रवृति दोष मिथ्या ज्ञानानामुत्तरोत्तरपाये तदनन्तरापायादपवर्गः । न्याय द० ।१।१।२। तत्वज्ञान के होने से मिथ्या ज्ञान नष्ट हो जाता है और मिथ्या ज्ञान के नष्ट होने से दोष नष्ट हो जाते हैं दोषों के नाश से प्रवृत्ति नहीं होती और प्रवृत्ति के न होने से जन्म नहीं होता और जन्म के न होने से दुःख नहीं हो सकता अस्तु दुःख का न होना या नाश होना ही मोक्ष है । अतः सिद्ध है कि मोक्ष क्रम से होता है ।

(२२७) **प्रश्न**—दुःख किसको कहते हैं ? (उत्तर) दुःख का निरूपण प्रथम भाग में किया जा चुका है परन्तु प्रकरणानुसार यहां पुनः लिखा जाता है न्याय शास्त्र में (बाधना लक्षणं दुःखमिति) बन्धन को और सांख्य में आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक त्रितापों को तथा योग दर्शन में (अविद्याऽस्मिता राग द्वेषाऽभिनिवेशःपञ्चक्लेशाः) अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश, इन पांच क्लेशों को दुःख माना है । परन्तु तात्पर्य सब आचार्यों का एक ही है कि आत्मा के विरुद्ध जो कार्य है वही दुःख है ।

(२२८) **प्रश्न**—(तमेव विदित्वादि मृत्यु मेति नान्यः पन्था विद्यते यनाय । यजु०) वेद में ब्रह्मज्ञान ही मोक्ष का साधन बतलाया गया है अन्य नहीं परन्तु आचार्य यहां षड् लौकिक (द्रव्य गुण कर्मादि) पदार्थों के तत्वज्ञान से मोक्ष होना मानते हैं सो क्यों (उत्तर) जब तक

पृथिव्यादि जड़ पदार्थों का ज्ञान नहीं होगा तब तक उससे सूक्ष्म जीवात्मा तथा जीवात्मा से भी अति सूक्ष्म परमात्मा का ज्ञान कैसे होगा अतः आचार्य ने जड़ और चेतन सभी पदार्थों के तत्वज्ञान से मोक्ष होना स्वशास्त्र में वर्णन किया है।

(२२९) प्रश्न—मुक्त पुरुष को शरीर और इन्द्रियादि मुक्तावस्था में प्राप्त होते हैं वा नहीं ? (उत्तर) अभावं बादरि ह्येवम्। वेदान्त द० ४।४।१०। अर्थ— बादर्याचार्य्य ने मुक्त पुरुष के शरीर और इन्द्रियों का अभाव माना है, क्योंकि श्रुति ऐसा कहती है। मनसैतान् कामान् पश्यन् रमते। छा० ८। १२। ५॥ य एते ब्रह्मलोके। छा० ८।१३। १। मन से इन कामनाओं को देखता हुआ आनन्द भोगता है। जो यह ब्रह्मलोक में है। यदि शरीर और इन्द्रियों से आनन्द भोगता, तो 'मनसा, मन से यह विशेषण न होता, क्योंकि संकल्प जन्य कामनायें मन से तो भोगी ही जाती हैं यह प्रसिद्ध है। सो यह 'मनसा, विशेषण शरीर और इन्द्रियों की निवृत्ति के लिये है। इस लिये मोक्ष में शरीर और इन्द्रियों का अभाव है॥ भावं जैमिनिर्विकल्पामननात्। वेदान्त द० ४। ४। ११।

अर्थ— जैमिनि आचार्य्य ने शरीर और इन्द्रियों का भाव माना है, क्योंकि "स एकधा भवति त्रिधा भवति" वह एक प्रकार से होता है, तीन प्रकार से होता है, छा० ७।२६।२। इत्यादि से अनेक प्रकार के होने का विकल्प पढ़ते हैं। अनेक विधि होना शरीर भेद के बिना ठीक नहीं हो सकता।

(२३०) प्रश्न — कणाद मुनि जी ने छः ही पदार्थ क्यों माने हैं अभाव क्यों नहीं ?

(उत्तर) षड् पदार्थों के भाव कथन करने से सातवां अभाव पदार्थ अर्थापत्ति से आगया अतः अभाव का वर्णन नहीं किया।

(२३१) प्रश्न — सुवर्ण ईश्वर और अन्धकार ये द्रव्य हैं वा नहीं ? (उत्तर) " नहीं ,, क्योंकि सुवर्ण अग्नि का अवयव है जीव और ईश्वर का नाम आत्मा है तथा अन्धकार तेज का अभाव है अतः इन सबों को द्रव्य नहीं माना है।

(२३२) प्रश्न — गुण कितने हैं (उत्तर) २४ चौबीस। प्रश्न—गुण यदि २४ हैं तो आचार्य ने १७ ही गुण क्यों कहे हैं ? (उत्तर) आचार्यने १७ गुणों को गिना कर शेष ७ गुणों के लिये " च ,, शब्द का प्रयोग किया है अर्थात् " च ,, शब्द से गुरुत्व , द्रवत्व, स्नेह, शब्द धर्म और अधर्म तथा संस्कार इन सातों का भी ग्रहण हो जाता है ऐसा ही सब वैशेषिक के टीकाकारों ने माना है।

(२३३) प्रश्न—शक्तित्व, लघुत्व, मृदुत्व और कठिनत्व गुण हैं वा नहीं यदि हैं तो गुणों में क्यों नहीं गिनाये ? (उत्तर) शक्ति सब पदार्थों में है किसी से भिन्न नहीं और लघुत्व–गुरुत्व के अंतरगत है तथा मृदुत्व व कठिनत्व अवयवों के संयोग विशेषरूप हैं भिन्न नहीं अतः नहीं गिनाये।

(२३४) प्रश्न—गन्धनादि गुण आकाश में हैं वा नहीं ? (उत्तर) त आकाशे न विद्यंते। आकाश में गन्धनादि गुण नहीं है।

(२३५) **प्रश्न**–घृतादि और जल का सामान्य है वा नहीं ? (उत्तर) सर्पिर्जतुमधूच्छिष्टा नामग्नि संयोगात् द्रवत्वमद्भिः सामान्यम् ॥२।१।६॥ अर्थ–घृत, लाक्षा, मधु आदिकों का अग्नि के संयोग से द्रवत्व उत्पन्न होता है तब ये जल के सदृश समान हो जाते हैं। और (त्रपुसीस लोहरजतसुवर्णानामग्निसयोगाद् द्रवत्वमद्भिः सामान्यम् । २।१।७॥) अर्थ–रांगा, सीसा, लोहा, चांदी और सोने का अग्नि के संयोग से द्रवत्व होने से जलों से सामान्य है।

(२३६) **प्रश्न**–(स्पर्शवान्वायुः) वायु का जो यह लक्षण कहा है कि स्पर्श वाला वायु है सो ठीक नहीं क्योंकि जब वायु का होना ही असिद्ध है तो स्पर्श का आधार कैसे ? (उत्तर) विषाणी ककुद्मान् प्रान्तेबालधिः सास्ना-वान् इति गोत्वे दृष्ट लिंगम् । स्पर्शश्चवायोः ॥ २ । १ । ८।९॥ अर्थ–जैसे सींग ऊंचो ककुद (मौर) पूंछ के अन्त में बाल और गल कम्बल अर्थात् गो जाति के कण्ठ में लम्बा जो चमड़ा इत्यादि गुण वाला जो हो वह बैल है यह बैल का लक्षण है । एवं वायु का स्पर्श भी चिन्ह है जिस से वायु जाना जाता है ।

(२३७) **प्रश्न**–स्पर्श चिन्ह वायु का ही है यह क्यों; पृथिवी, जल, अग्नि का क्यों नहीं ? (उत्तर) न च दृष्टा-नां स्पर्श इत्यऽदृष्टलिंगो वायुः ॥२।१।१०॥ अर्थ–पृथिवी, जल, अग्नि का स्पर्श रूप रहित नहीं होता पर वायु का स्पर्श रूप रहित होता है अतः स्पर्श गुण वायु का ही है ।

(२३८) **प्रश्न**–स्पर्श गुण वाला वायु द्रव्य है वा नहीं ? (उत्तर) अद्रव्यवत्त्वेन द्रव्यम् । २।१ । ११ ॥ अर्थ–स्पर्श गुण द्रव्य नहीं अतः वायु द्रव्यवान् न होने से स्वयं

द्रव्य है । और (क्रियावत्त्वाद् गुणवत्त्वाच्च ॥२।१।१२॥) क्रिया और गुण वाला होने से वायु द्रव्य ही है ।

(२३९) **प्रश्न**—क्रियावान् और गुणवान् होने से वायु परिमाणु घट पटादि के समान अनित्य क्यों नहीं ? (उत्तर) अद्रव्यत्वेन नित्यत्वमुक्तम् ॥ २ । १ । १३ ॥ अर्थ—द्रव्यवान् न होने से परमाणु स्वरूप वायु को नित्यत्व कहा है ॥

(२४०) **प्रश्न**—वायु एक है वा अनेक ? (उत्तर) वायोर्वायुसंमूर्छनं नानात्वे लिंगम् ॥२-१-१४ ॥ अर्थ—वायु से वायुओं का जो संयोग विशेष है वह वायु के अनेक होने में प्रमाण है ॥

(२४१) **प्रश्न**—वायु अदृष्ट लिंग है सो कैसे ? (उत्तर) वायुसन्निकर्षे प्रत्यक्षाऽभावाद् दृष्टं लिंगं न विद्यते । सामान्यतो दृष्टाच्चाऽविशेषः ॥२-१-१५-१६॥ अर्थ—वायु के सन्निकर्ष में प्रत्यक्ष का अभाव होने से वायु दृष्ट लिङ्ग नहीं है । और सामान्य तो दृष्ट से भी सामान्य सिद्ध है जैसे किसी एक मनुष्य को काशी में देखा था उसी को कालांतर में जब मथुरा में देखा तब काशी से मथुरा जाने का बिना देखे निश्चय हो गया क्योंकि काशी से मथुरा बिना गये वह पहुंच नहीं सक्ता इस ज्ञान को सामान्यतो दृष्ट कहते हैं इसी प्रकार स्पर्श गुण से उसके आश्रय द्रव्य वायु का भी अनुमान होता है किन्तु इस प्रमाण से स्पर्श का आधार कोई द्रव्य तो अवश्य सिद्ध होता है पर वायु आदि नाम सिद्ध नहीं होता अतः विशेष ज्ञात नहीं कि वह क्या है सो (तस्मादागमिकम्) २।१।१७॥ शब्द प्रमाण और तदनुसार लोक में उसको वायु कहते हैं अतः सिद्ध है कि स्पर्शाधार वायु है ।

(२४२) प्रश्न—ईश्वर के होने में क्या प्रमाण (उत्तर) संज्ञा कर्मस्वस्मद्विशिष्टानां लिङ्गम् । प्रत्यक्ष प्रवृत्तत्वात्संज्ञा कर्मणः ॥२।१।१८।१९॥

अर्थ—हम सब से विशेष गुण युक्त ईश्वर और महर्षियों के होने में संज्ञा और कर्म प्रमाण है क्योंकि उन दोनों का कर्त्ता एक ही ईश्वर है कारण यह कि जैसे किसी के पुत्र व पुत्री उत्पन्न होती है तो उसका पिता बिना देखे रामरमादि नाम रखता है एवम् सर्गारम्भ में सर्व पदार्थों का नाम और कार्य्य परमेश्वर नियत कर्त्ता है अतः सिद्ध है कि ईश्वर कोई अवश्य है।

(२४३) प्रश्न—तदऽलिङ्गमेकद्रव्यत्वात्कर्मणः । कारणान्तरानुक्लृप्ति वैधर्म्याच्च । २ । १ । २१ । २२ ॥

अर्थ—कर्म के एक द्रव्यवान् होने से निष्क्रमण और प्रवेश आकाश का लिङ्ग नहीं क्योंकि जो कार्य जिस कारण से होता है उसी को उस कार्य का कारण मानना ठीक है अन्य कारण की कल्पना करना वैधर्म्य है अतः वैधर्म्यसे भी सिद्ध नहीं होता? (उत्तर) संयोगाद्भावः कर्मणः ।२।१। २३। अर्थ—आकाश में संयोग से कर्म का अभाव है तो भी आकाश के विना निष्क्रमण और प्रवेश नहीं हो सकता अतः सिद्ध होता है कि निष्क्रमण और प्रवेश आकाश का चिन्ह है। और (शब्द गुण माकाशं) शब्द गुण आकाश का है क्योंकि (कारण गुण पूर्वकः कार्य गुणो दृष्टः ।२। १ । २४) कारण गुण पूर्वक कार्य का गुण देखा जाता है अर्थात् कार्य में वही गुण होता है जो कि कारण में हो अतः शब्द कार्य गुण देख कर उस के कारण आकाश का होना सिद्ध है

(२४४) प्रश्न—शब्द गुण आकाश का ही क्यों माना जाय अन्य का क्यों नहीं ? (उत्तर) कार्यान्तराऽप्रादुर्भावाच्छब्दः स्पर्शवतामगुणः । परत्र समवायात्प्रत्यक्षत्वाच्चनात्मगुणो न मनोगुणः । परिशेषाल्लिङ्गमाकाशस्य । २ । १ । २५ । २६ । २७ ॥

अन्य कार्य के प्रादुर्भाव न होने से पृथिव्यादि चार स्पर्श वाले द्रव्यों का गुण शब्द नहीं है क्योंकि पृथिव्यादि के जो कार्य घट पटादि हैं उन से शब्द उत्पन्न नहीं होता और आत्मा तथा मन का भी शब्द गुण नहीं अतः शेष रहने से आकाश का शब्द लिङ्ग (चिन्ह) है अन्य का नहीं ॥

(२४५) प्रश्न—आकाश नित्य है वा अनित्य ? (उत्तर) द्रव्यत्व नित्यत्वे वायुना व्याख्याते । २ । १ । २९ ।

अर्थ—जिस प्रकार वायु स्पर्शवान् होने से तथा द्रव्यत्व और अन्य द्रव्य का कार्य न होने से नित्यत्व कहा गया है एवं आकाश भी शब्द गुणवान् होने से द्रव्यत्व और नित्यत्व कहा गया है ।

(२४६) प्रश्न—आकाश कोई तत्व है वा नहीं ? (उत्तर) तत्त्वं भावेन । शब्दलिङ्गाऽविशेषाद्विशेषलिङ्गाऽभावाच्च । तदनुविधानादेकं पृथक्त्वं चेति । २ । १ । २९ । ३० । ३१ ।

जिस प्रकार सत्ता एक है तदनुसार आकाश भी एक तत्व है शब्द चिन्ह के विशेष न होने से और विशेष चिन्ह के अभाव से आकाश एक ही तत्व है । अर्थात् शब्द आकाश का चिन्ह है वह सर्वत्र एकसा है और एक से विशेष होने का कोई चिन्ह नहीं अतः सत्ता के समान आकाश एक ही तत्व है तथा सब से पृथक् होने से भी आकाश का एक होना सिद्ध है जैसे घट पटादि पदार्थ अन्य

घट पटादिकों से पृथक् होने से एक हैं एवं आकाश भी एक ही है।

(२४७) प्रश्न—गन्ध गुण पृथिवी का ही है वा अन्यों का भी। (उत्तर) पुष्प वस्त्रयोः सति सन्निकर्षे गुणान्तराप्रादुर्भावो वस्त्रे गन्धाऽभाव लिङ्गम् ॥ २ । २ । १॥

अर्थ—पुष्प और वस्त्र के संयोग होने पर भी अन्य गुण का प्रादुर्भाव न होना वस्त्र में गन्ध न होने का चिन्ह है अर्थात् गन्धसहित पुष्प और गन्ध रहित वस्त्र को समीप रखने से भी वस्त्र में गन्ध नहीं होता और वस्त्र में यत्किञ्चित् गन्ध जो पुष्प के संसर्ग से प्रतीत होता है उस का कारण वायु है अतः सिद्ध है कि जैसे पुष्प और वायु के संसर्ग से वस्त्र में गन्ध गुण प्रकट होता है एवं वायु में भी पृथिवी के परमाणुओं के मिलने से गन्ध गुण ज्ञात होता है इस कारण से निश्चय होता है कि गन्ध गुण केवल पृथिवी का है अन्यों का नहीं।

(२४८) प्रश्न—काल (समय) नित्य और द्रव्य है वा नहीं? (उत्तर) नित्यत्व द्रव्यत्व वायुना व्याख्याते। २ । २ । ७।

अर्थ—वायु के साथ काल का नित्यत्व द्रव्यत्व व्याख्यान हो चुका है अर्थात् जैसे वायु द्रव्य, नित्य दोनों हैं एवं काल संयोगादि गुणों का आधार होने से द्रव्य और अन्य द्रव्यों का कार्य न होने से नित्य है।

(२४९) प्रश्न—काल एक है वा अनेक? (उत्तर) तत्वं भावेन।२।२।८। अर्थ—सत्ता के तुल्य काल का एकत्व जानना अर्थात् प० १ आ० १ सूत्र १७ में जिस प्रकार

सत्ता (होना) का एकत्व सिद्ध किया है तदनुसार काल का भी एकत्व जानना चाहिये। कारणे कालाख्येति। २। २। ९। अर्थ—नित्यपदार्थों में अभाव और अनित्य पदार्थों में भाव होने से कारण में काल संज्ञा है अर्थात् आत्मा आकाशादि नित्य पदार्थों में काल की निवृत्ति और अनित्य पदार्थों में काल की प्रवृत्ति होने से सब का कारण काल है।

(२५०)प्रश्न—दिशा नित्य और द्रव्य है वा नहीं? (उत्तर) द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते २।२।११।। अर्थ—दिशा का द्रव्यत्व और नित्यत्व वायु के समान व्याख्यान किया गया है तदनुसार जानना। अर्थात् जिस प्रकार वायु नित्य है वैसा ही दिशा भी नित्य है॥

(२५१)प्रश्न—दिशा एक है वा अनेक? (उत्तर) तत्वं भावेन। २।२।१२। अर्थ—सत्ता के समान दिशा का एकत्व जानना। अर्थात्—जिस प्रकार सत्ता एक है तदनुसार दिशा भी एक है।

(२५२) प्रश्न—यदि एक ही दिशा है तो दश दिशायें क्यों मानी जाती हैं? (उत्तर कार्य विशेषेण नानात्वम्। २।२।१३। अर्थ—कार्य की विशेषता से अनेक दिशायें मानी गई हैं॥

(२५३) प्रश्न—कार्य विशेष क्या है? (उत्तर)आदित्य संयोगाद्भूत पूर्वाद्भविष्यतो भूताच्चप्राची॥ तथा दक्षिणाप्रतीची उदीची च॥ एतेनदिगन्तरालानि व्याख्यातानि २।२।१४।१५।१६। अर्थ—सूर्योदय के संयोग से पूर्व हुये और वर्त्तमान् में होते हुये तथा भविष्य में होने वाले दिशा का नाम पूर्व है—अर्थात् प्रथम जिस दिशा से

सूर्योदय होता था और अब होता है और भविष्य में होगा उस दिशा को पूर्व दिशा कहते हैं एवं दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा है, पूर्वोक्त प्रकार के कथन से दिशाओं के मध्य के भाग का वर्णन हो चुका । अर्थात् पूर्व और दक्षिण के मध्य कोण का नाम आग्नेय दक्षिण पश्चिम के मध्य कोण का नाम नैऋत्य, पश्चिम उत्तर के मध्य कोण का नाम वायव्य और उत्तर पूर्व के मध्य कोण का नाम ईशान है ॥ दिशा की परीक्षा के बाद अब शब्द —की परीक्षा की जाती है :—

(२५४) प्रश्न—तुल्य जातीयेष्वर्थान्तरभूतेषु विशेषस्योभयथा दृष्टत्वात् । २ । २ । २२ ॥

अर्थ—तुल्य जातीय रूपादि २३ गुणों और द्रव्यादि ९ अर्थों में तथा उत्क्षेपणादि ५ कर्मों में विशेष के उभय पक्ष देखने से संदेह होता है कि शब्द कोई गुण है वा कर्म है वा द्रव्य ? (उत्तर) एक द्रव्यत्वान्नद्रव्यम् २ । २ । २३ ॥ अर्थ—एक द्रव्यत्व होने से शब्द द्रव्य नहीं । और (नाऽपिकर्मानक्षुषत्वात् । २ । २ । २४) अर्थ—नेत्रसे भिन्न श्रोत्र इन्द्रियका विषय होनेसे शब्द कर्म भी नहीं है क्योंकि यदि कर्म होता तो नेत्रसे अवश्य दिखाई देता ॥

(२५५) प्रश्न—जिस प्रकार कर्म नाशवान् है तदनुसार शब्दभी. अतः शब्द कर्म क्यों नहीं ? (उत्तर) गुणस्य सतोऽपवर्गः कर्मभिः साधर्म्यम् । २ । २ । २५ ॥ अर्थ—गुण का सत होते हुये शब्द का नाश धर्म कर्मों के साथ समान धर्म है तो भी शब्द कर्म नहीं क्योंकि सुख दुःख आदि भी तो नाशवान् हैं और नाशवान् होनेसे कर्मों के साथ साधर्म्य है तो क्या ये भी कर्म हैं "नहीं" अतः शब्द और कर्मों का विनाशित्व साधर्म्य से भी शब्द कर्म नहीं ॥

(२५६) प्रश्न–शब्दनित्य है वा अनित्य (उत्तर) सतो लिङ्गा भावात्॥ नित्यवैधर्म्यात्। अनित्यश्चायं कारणतः लिङ्गाच्चाऽनित्यः शब्दः ।।२।२। २६। २७। २८। ३२ ।।

अर्थ–सतके लिङ्ग का अभाव होने से और नित्य वैधर्म्य से तथा कारण से भी यह शब्द अनित्य है क्योंकि कोई ऐसा चिन्ह नहीं पाया जाता जिससे शब्द का नित्यत्व सिद्ध हो और नित्य पदार्थ का धर्म है कि वह न उत्पन्न होता न नष्ट होता है परन्तु शब्द नित्य पदार्थों के धर्मों से विरुद्ध उत्पन्न और नाशवान् है अतः शब्द अनित्य है शब्द लिङ्गवान् होने से भी अनित्य है जैसे घट पटादि ॥

(२५७) प्रश्न—शब्द कारण वाला है सो कैसे? (उत्तर) न चाऽसिद्धम् विकारात् ॥ २ । २ ।२९ ॥ अर्थ–विकार युक्त होने से शब्द का कारणत्व असिद्ध नहीं है ॥

(२५८) प्रश्न—द्वयोस्तु प्रवृत्त्योरभावात् ॥ प्रथमाशब्दात् ॥ सम्प्रति पत्तिभावाच्च ॥ २ । २ । ३३ । ३४ । ३५ ॥

अर्थ–शिष्य और आचार्य का पठन पाठन में प्रवृत्ति न होने से शब्द नित्य है क्योंकि यदि शब्द अनित्य होता तो आचार्य के उच्चारित शब्द को शिष्य पुनः न कह सकता, कारण आचार्य का उच्चारण किया हुआ शब्द अनित्य होने से तुरन्त नष्ट हो जाता परन्तु ऐसा नहीं होता अतः सिद्ध है कि शब्द नित्य है। दूसरा हेतु। तीन बार प्रथम ऋचा को और तीन बार उत्तम ऋचा को पढ़ने के लिये ऐतरेय ब्राह्मण– । ३ । ३ । में लिखा है सो शब्द की नित्यता के बिना नहीं हो सकता क्योंकि एक बार पढ़ी हुई ऋचा शब्द के अनित्यत्व से नष्ट हो जाती फिर पुनः तीन बार उत्तम ऋचा कैसे पढ़ी जाती अतः शब्द नित्य है तीसरा हेतु–जिस मंत्र को इन्द्र ने पढ़ा । उसी

को सूर्य्य बारम्बार पढ़ता है यदि शब्द अनित्य होता तो एक के पढ़े हुये को दूसरा न पढ़ सकता अतः इससे भी शब्द का नित्यत्व सिद्ध है (उत्तर) संदिग्धाः ॥ २ । २। ३६ ॥

अर्थ—शब्द के नित्यत्व में जितने हेतु दिये हैं वे सब संदिग्ध हैं क्योंकि आचार्य के उच्चारण किये हुये शब्द को शिष्य का बोलना एवं प्रथमा और उत्तमा ऋचा का तीन बार उच्चारण करना आदि सादृश्य ज्ञान से होता है जैसे इन्द्र ने सूर्य्य से मंत्र कहा सूर्य तदनुसार पुनः उस मंत्र को कहता है सो सादृश्य ज्ञान से नकि शब्द के नित्यत्व से क्योंकि कथन करने में जैसे इन्द्र स्वतन्त्र है वैसे ही सूर्य्य भी। अतः पूर्वोक्त हेतुओं से शब्द का नित्यत्व सिद्ध नहीं होता है ॥ एक घट को बनाते देखकर अन्य पुरुष तदनुसार अन्य घट बनाता है उस को देखकर तीसरा पुरुष अनेकों घट बनाता है तो क्या इससे घट का नित्यत्व सिद्ध होगा क्योंकि घट के अनित्य होने से अन्य घट भी नहीं बन सकता अतएव जिस प्रकार अनित्य घट से अनित्य घट बनाया जाता है एवं अनित्य शब्द से अनित्य शब्द पुनः कहा जा सकता है। नित्य मानने की कोई आवश्यकता नहीं ॥

(२५९) (प्रश्न) यदि शब्द अनित्य है तो ६३ त्रिषठ वर्णादि संख्या कैसे हो सकती है ? (उत्तर) बहुत्वेसति संख्याभावः सामान्यतः ॥२।२।३७॥ अर्थ—बहुतायत होने पर भी संख्याभाव सामान्य से है अतः शब्द के अनित्यत्व में कोई क्षति नहीं ॥ शब्द की परीक्षा समाप्त करके अब आत्मा की परीक्षा की जाती है ॥

(२६०) प्रश्न—आत्माके अस्तित्व में क्या हेतु है ? (उत्तर) प्रसिद्धा इन्द्रियार्थाः ॥ इन्द्रियार्थ प्रसिद्धिरिन्द्रिया-

र्थेभ्योऽर्थान्तरस्य हेतुः ॥ ३।१।१. २॥ अर्थ—इन्द्रियों के अर्थ (विषय) प्रसिद्धि हैं अर्थात् नासिका से गन्ध, जिह्वा से रस, नेत्र से रूप, त्वचा से स्पर्श और श्रोत्र से शब्द होते हैं अन्य से नहीं। अतः इन्द्रियों के अर्थों की प्रसिद्धि ही इन्द्रियार्थों से भिन्न अन्य अर्थ (आत्मा) की सिद्धि में कारण है ॥

(२६१) प्रश्न—इन्द्रियार्थों से भिन्न आत्मा क्यों मानना जाय शरीर क्यों न मानलिया जाय? (उत्तर) सोऽनपदेशः॥ कारणाऽज्ञानात् ॥३। १। ३। ४॥ अर्थ—शरीर को ज्ञानाधार सिद्ध करणार्थ जो हेतु है वह हेतु अप्रमाणिक है क्योंकि जो जिसके आधार से हो वह उसका कार्य हो यह कोई सिद्धान्त नहीं जैसे दीपक घट पटादि पदार्थों के देखने वा दिखाने में सहायक है परन्तु ज्ञान का कारण नहीं एवं ज्ञानाधार शरीर होने पर भी ज्ञान का कारण शरीर नहीं किन्तु आत्मा है क्योंकि शरीर के जो कारण पञ्च तत्वादि हैं उनमें ज्ञान नहीं।

(२६२) प्रश्न—पञ्चभूतों में ज्ञान क्यों नहीं? (उत्तर) कार्येषु ज्ञानात् ॥ अज्ञानाच्च ॥ ३। १।५,६ ॥ अर्थ—यदि पञ्चभूतों में ज्ञान है तो उनके घटपटादि पाञ्चभौतिक कार्यों में भी ज्ञान होना चाहिये पर घट पटादि में ज्ञान नहीं अतः उनमें ज्ञान न होने से पञ्चभूतों में भी ज्ञान नहीं है ॥

(२६३) प्रश्न—नेत्रादि इन्द्रियां के द्वारा ज्ञान होने से आत्मा को ज्ञानाधार मानना ठीक नहीं क्योंकि इन्द्रियों के साथ आत्मा का तादात्म्य सम्बन्ध नहीं? (उ०) अन्य देवहेतुरित्यनपदेशः॥ अर्थान्तरं ह्यर्थान्तरस्यानपदेशः। ३।१। ७। ८। अर्थ—हेतु साध्य से भिन्न ही होता है यह हेतु ठीक नहीं क्योंकि यदि अन्य

ही हेतु होता है तो धूम को अग्नि का ही कारण क्यों मानें गदहे का क्यों नहीं क्योंकि गदहे से धूम अन्य है। यह भी नियम नहीं कि एक अर्थ दूसरे अर्थ का हेतु ही हो। सांख्य तथा न्याय में भी आत्माको शरीरादि से भिन्न माना है। यथा "दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणात्॥ शरीरदाहेपातकाभावात्॥ सव्यदृष्टस्येतरेणप्रत्यभिज्ञानात्॥ न्याय द० ॥ ३। १। १। ४। ७॥ अर्थः—दर्शन और स्पर्शन दोनों से एक ही अर्थ का ग्रहण होनेसे आत्मा शरीरादि से भिन्न है क्योंकि इन्द्रियों के धर्म नियत हैं तब नेत्र के देखे हुये पदार्थ का जिह्वादि अन्य इन्द्रियों को ज्ञान न होना चाहिए किन्तु होता है अतः सिद्ध है कि सर्व विषयों का ज्ञाता जीवात्मा इन्द्रियों से भिन्न है ॥१॥ शरीर के जलाने में पाप का अभाव होने से आत्मा शरीर से भिन्न है क्योंकि यदि शरीर से भिन्न कोई आत्मा नहीं है तो मृतक शरीर के जलाने में पाप मानना चाहिये परन्तु पाप जीवित शरीर के जलाने में माना जाता है अतः सिद्ध है कि आत्मा शरीर से भिन्न है ॥४॥ बाईं आंख से देखी हुई वस्तु की दाहिनी आंख से प्रत्यभिज्ञा होती है इससे सिद्ध होता है कि उस प्रत्यभिज्ञा का कर्त्ता इन्द्रियों से भिन्न जो है वही आत्मा है क्योंकि इन्द्रियां यदि चैतन्य होतीं तो बाईं आंख से देखी हुई वस्तु को दाईं आंख कभी पहचान नहीं सकती ॥७॥ देहादि व्यतिरिक्तोऽजीवैचित्र्यात्॥ षष्ठी व्यपदेशादपि॥ सांख्य दर्शन॥ अ० ९। २। अर्थ—आत्मा विचित्र होने से देहादि से पृथक् है॥२॥ और षष्ठी विभक्ति के व्यपदेश से भी आत्मा देहादि से भिन्न है। षष्ठी विभक्ति का अर्थ का, के, की, है अतः देवदत्त की पुस्तक है यज्ञदत्त का सिर है यहां यदि देवदत्त

का पुस्तक यह षष्ठी विभक्ति का प्रयोग न होता अतएव सिद्ध होता है कि आत्मा देहादिसे भिन्न है ॥ ३ ॥ प्रसिद्धि पूर्वकत्वादुपदेशस्य ॥ वै० ३।१।१४॥ अर्थ—लिङ्ग के प्रसिद्ध पूर्वक होने से आत्मा देहादि से भिन्न है जैसे धूमरूप लिङ्ग से अग्निरूपी लिंगी का ज्ञान होता है एवम् ज्ञानरूप लिंग से आत्मारूपी लिंगी का अनुमान होता है और (आत्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नस्य यद्यत् । प्रवृत्तिनिवृत्तीच प्रत्यगात्मनि दृष्टे परत्रलिंगम् । ३ । १ । १९ । २० ॥) अर्थ—आत्मा और इन्द्रिय तथा इन्द्रियों के विषय के सन्निकर्ष से उत्पन्न जो ज्ञान वह हेत्वाभासों से पृथक् यथार्थ ज्ञान है उसी ज्ञान का जो आधार है वह आत्मा है प्रवृत्ति और निवृत्ति अपने आत्मा में जैसी देखी जाती है तदनुसार अन्य में देखने से अन्य शरीरस्थ आत्मा की पहिचान होती है ।

(२६४) प्रश्न—आत्मा द्रव्य और नित्य है सो कैसे ? (उत्तर) तस्य द्रव्यत्व नित्यत्वे वायुना व्याख्याते ।३।२।५॥ अर्थ—आत्मा का द्रव्यत्व और नित्यत्व वायु के समान कहा गया है अर्थात् जिस प्रकार वायु द्रव्य और नित्य है तदनुसार आत्मा भी द्रव्य और नित्य है ।

(२६५) प्रश्न—आत्मा के अस्तित्व में ज्ञानादि गुण जो कहा गया है वह तो अदृष्ट चिन्ह है इसमें दृष्ट चिन्ह (प्रत्यक्ष प्रमाण) क्या है ? (उत्तर) यज्ञदत्त इति सन्निकर्षे प्रत्यक्षा भावाद् दृष्टं लिङ्गं विद्यते । ३ । २ । ६ ॥

अर्थ—यज्ञदत्त के समीप होने पर भी "यह यज्ञदत्त है,, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञान न होने से आत्मा की सिद्धि में दृष्टलिङ्ग (ज्ञान) नहीं होता ॥

(२६६) **प्रश्न**—यदि आत्म सिद्धि में दृष्ट लिङ्ग ज्ञान नहीं होता तो आत्मा को कैसे मानें? (उत्तर) सामान्यतो दृष्टाच्चाविशेषः ॥ तस्मादागमिकः । ३ । २ । ७ । ८ ॥

अर्थ— सामान्यतो दृष्ट व ज्ञानादि गुणों से आत्मा की सिद्धि होती है और विशेष कुछ नहीं। जिस प्रकार मनुष्य बिना गये एक स्थान से अन्य स्थान पर नहीं पहुंच सक्ता अतः बिना देखे जैसे उसके जाने का निश्चय होता है एवं शरीर में ज्ञानादि गुणों के देखने से बिना दृष्ट लिङ्ग के भी शरीराधिपति ज्ञानाश्रय (आत्मा) का होना शास्त्रीय प्रमाणों से सिद्ध है।

(२६७) **प्रश्न**—आठ द्रव्यों में से किसी एक द्रव्य को ही आत्मा क्यों न माना जाय? (उत्तर) अहंमिति शब्दस्य व्यतिरेकाच्चागमिकम् । ३ । २ । ९ ॥

अर्थ—मैं इस शब्द के भिन्न होने से पृथिव्यादि आठ द्रव्यों में से किसी एक द्रव्य को आत्मा मानना शास्त्र के विरुद्ध है क्योंकि मैं वा मेरा यह व्यवहार पृथिव्यादि में नहीं होता ॥

(२६८) **प्रश्न**—यदि दृष्ट मन्वक्षमहं देवदत्तोऽहं यज्ञदत्त इति । ३।२।१०॥

अर्थ—यदि मैं देवदत्त हूं मैं यज्ञदत्त हूं इस प्रकार प्रत्यक्ष देखे हुये को ही आत्मा क्यों न मान लें? (उत्तर) दृष्टआत्मनि लिङ्गे एक एव दृढत्वात् प्रत्ययः ।३। २ । ११ ॥ अर्थ—यदि देवदत्त वा यज्ञदत्त को ही आत्मा माना जायगा तो शरीर समुदाय में ही निश्चय प्रतीत हो जायगा कि यही आत्मा है तब ज्ञानादि गुणों की जिज्ञासा आत्मा सम्बन्धि करना व्यर्थ हो जायगा अतः सिद्ध है कि देवदत्तादि संज्ञा वाचक शरीरादि को आत्मा मानना ठीक नहीं ॥

(२६९)प्रश्न—देवदत्तो गच्छति यज्ञदत्तो गच्छती-त्युपचाराच्छरीरे प्रत्ययः। ३। २।१२॥ अर्थ—देवदत्त जाता है यज्ञदत्त जाता है ऐसे उपचार से जाने वाला शरीर ही ज्ञात होता है अन्य ज्ञानादि गुण वाला आत्मा नहीं अतः आत्मा की देवदत्तादि संज्ञा मानना युक्त नहीं। (उत्तर) सदिग्धस्तूपचारः ।३।२।१३॥ अर्थ—यह उपचार (कथन) संदेह युक्त है क्योंकि इस कथन से यह निश्चय नहीं होता कि वक्ता का अभिप्राय देवदत्त व यज्ञदत्त को जाते हुये देखकर शरीर को जाने वाला समझता है वा आत्मा को अतः यह यहां निश्चय नहीं कि देवदत्तादि संज्ञा शरीर की ही है॥

२७० प्रश्न—यदि शरीर में देवदत्तादि संज्ञा सन्देह युक्त है तो किस में है। (उत्तर) अहमिति प्रत्यगात्मनि भावात्परत्राऽभावादर्थान्तर प्रत्यक्षः॥ ३।२।१४॥

अर्थ—मैं हूं यह व्यवहार अदृश्य आत्मा में होने से और देह में न होने से आत्मा ही को प्रत्यक्ष होना निश्चित है।

२७१ प्रश्न—देवदत्तो गच्छतीत्युपचारादभिमानात्तावच्छरीर प्रत्यक्षोऽहङ्कारः। ३।२। १५॥ अर्थ—देवदत्त जाता है इस प्रयोग और अभिमान से शरीर विषयक ही कथन प्रत्यक्ष होता है क्योंकि मैं पढ़ता हूं जाता हूं इस में अहङ्कार मैं शब्द का शरीर ही में घटना सम्भव है आत्मा में नहीं। (उत्तर) सदिग्धस्तूपचारः॥ ३।२।१६॥ अर्थ—यहां भी यह कथन संदेह युक्त ही है कि देवदत्तादि के आने जाने में शरीर का आना जाना निश्चित है वा आत्मा का अतः यहां भी दो में से किसी को नहीं मान सक्ते। न तु, शरीर विशेषाद् यज्ञदत्त विष्णुमित्रयोर्ज्ञानं विषयाः ।३।२।१७) अर्थ— शरीर के भिन्न भिन्न होने से यज्ञदत्त विष्णुमित्र का

ज्ञानादि गुण भी भिन्न भिन्न है अतः सिद्ध है कि शरीर ही प्रत्यक्ष है फिर सन्देह करना क्यों ? (उत्तर) अहमिति मुख्ययोग्याभ्यां शब्दवद्व्यतिरेकाऽव्यभिचाराद्विशेष सिद्धेर्नागमिकः ।३।२।१८॥ अर्थ–मैं इस उपचार रहित योग्य प्रत्ययों से शब्द के तुल्य व्यतिरेक व्यभिचार के न होने से आत्मा की सिद्धि शास्त्रानुसार ही नहीं है किन्तु अनुमान से भी सिद्ध है ।

(२७२) **प्रश्न**–आत्मा एक है वा अनेक ? (उत्तर)सुख दुःख ज्ञान निष्पत्त्य विशेषादैकात्म्यम् ।३।२।१९॥ अर्थ–सुख दुःख और ज्ञान सब प्राणियों में एक होने से आत्मा एक है अनेक नहीं ।

(२७३) **सिद्धान्त सूत्र**–व्यवस्थातो नाना ॥ शास्त्र सामर्थ्याच्च ।३।२।२०,२१॥ अर्थ–पूर्व सूत्र में आत्मा का एक होना सिद्ध किया है सो ठीक नहीं क्योंकि. सर्व प्रकार के शरीर धारियों में सुख दुःख ज्ञानादि के व्यवस्था के भेद से आत्मा अनेक हैं । आत्मा के अनेकत्व में शास्त्रों के भी अनेक प्रमाण हैं यथाः–पुरुष बहुत्व व्यवस्यातः ॥ नाद्वैत श्रुति विरोधो जाति परत्वात् ॥ सांख्य दर्शन ॥६।४५॥१।१५४॥ नित्यो नित्यानाम् चेतनश्चेतनामेको बहूनां यो विदधातु कामान् ॥०॥ इत्यादि ॥

॥ आत्मा की परीक्षा समाप्त करके अब आचार्य्य—"प्रकृति की परीक्षा प्रारम्भ करते हैं" ॥:—

(२७४) **प्रश्न**—नित्य किसको कहते हैं ? (उत्तर) सदकारणवन् नित्यम् ॥४।१।१॥ अर्थ—जिसका कोई कारण न हो और जो नाश न होने वाला सत् हो वह नित्य है । नित्य वस्तु (परमाणु) प्रकृति आत्मा से भिन्न है ।

(२७५) **प्रश्न**—प्रकृति का चिन्ह क्या है ? (उत्तर) तस्य कार्यं लिङ्गम् ॥४।१।२॥ अर्थ—उस प्रकृति का कार्य उसका चिन्ह है जैसे परमाणु रूप पृथिवी का घट रूप कार्य है।

(२७६) **प्रश्न**—कारण का चिन्ह कार्य क्यों ? (उत्तर) कारण भावात् कार्य भावः ।४।१।३॥ अर्थ—कारण के होने से कार्य होता है बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता जैसे श्वेत मृत्तिका से श्वेत घट और श्वेत तन्तुओं से श्वेत वस्त्र बनता है।

(२७७) **प्रश्न**—कार्य्य से कारण की सिद्धि तो होती है पर कारण के नित्यत्व में क्या प्रमाण ? (उत्तर) अनित्यं इति विशेषतः प्रतिषेधभावः ।४।१।४ अर्थ—अनित्य इस शब्द में नञ् समास होने से नित्य के निषेधका अभाव है क्योंकि यदि कोई नित्य पदार्थ न होता तो तद्विरुद्ध अनित्य किसको कहते। यदि यह कहा जाय कि नित्य की अपेक्षा बिना अनित्य मानते हैं सो "अविद्या ॥४।१।५॥" अज्ञानता है॥

(२७८) **प्रश्न**—प्रकृति नेत्र से देखी जा सकती है वा नहीं? (उत्तर) महत्यनेक द्रव्यवत्त्वाद् रूपाच्चोपलब्धिः । ४। १।६ अर्थ—स्थूल पदार्थ वा महत्तत्व अनेक द्रव्यवत्व होने से व रूप से प्रत्यक्ष होता है परन्तु प्रकृति अनेक द्रव्य वाली नहीं है और न रूपवान् अतः नेत्र से नहीं देखी जा सकती।

(२७९) **प्रश्न**—अनेक द्रव्यवान् और महान् होने से वायु नेत्र से क्यों नहीं दिखाता ? (उत्तर) सत्यपिद्रव्यत्वे महत्त्वेरूपसंस्कारभावाद् वायोरनुपलब्धिः । ४ । १ । ७ । अर्थ—वायु द्रवत्व और महत्त्व होने पर भी रूप संस्कार के अभाव से नेत्र से नहीं दिखाता।

(२८०) **प्रश्न**—रूप के दिखाने का क्या कारण है ?

(उत्तर) अनेक द्रव्यसमवाय द् रूपविशेषाच्च रूपोपलब्धिः न रस गन्धस्पर्शेषु ज्ञानं व्याख्यातम् । ४ । १ । ८ । ९ । अर्थ—अनेक द्रव्यों के समवाय और रूप के विशेषसेरूपको आंख से उपलब्धि होती है इसी प्रकार रस गन्ध स्पर्शादिकों में रस गन्ध स्पर्शादिकों का ज्ञान होता है ।

(२८१) प्रश्न—पाषाणादि में जो गन्ध है वह नासिका से क्यों नहीं मालूम होता ? (उत्तर) तस्याऽभावादऽव्यभिचारः । ४ । १ । १० ॥ अर्थ—पाषाणादि में गन्ध गुण के विशेष न होने से नासिका से उसका अनुभव नहीं होता ।

(२८२) प्रश्न—रूप रस गन्धादि के समान संख्या परिमाणादिकों का ज्ञान नेत्र से होता है वा नहीं ? (उ०) संख्याः परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वापरत्वे कर्म च रूपिद्रव्यसमवायाच्चाक्षुषाणि ॥ ४ । १ । ११ । अर्थ—एक दो आदि संख्यायें लम्बाई चौड़ाई सेर छंटाक आदि परिमाण अलग होना संयोग और विभाग पर और अपर होना उत्क्षेपणादि पञ्च कर्म और स्नेह द्रवत्व और त्वचा ये सब रूपवान् द्रव्यों के साथ समवाय सम्बन्ध होने से चक्षु से देखे जाते हैं और (अरूपिष्व चाक्षुषाणि ॥ ४ । १ । १२) रूप रहित द्रव्यों में ये संख्यादिगुण चक्षु से नहीं देखे जाते । (एतेन गुणत्वेभावे च सर्वेन्द्रियं ज्ञानं व्याख्यातम् । ४ । १ । १३) अर्थ—इसी प्रकार से गुणत्व और भाव में सम्पूर्ण इन्द्रियों वाला ज्ञान कहा गया है ।

(२८३) प्रश्न—पृथिव्यादि कार्य द्रव्य पञ्चभूतों से एक २ बनता है वा स्वयम् अकेले ही ? (उत्तर) प्रत्यक्षाऽप्रत्यक्षाणां संयोगास्याऽप्रत्यक्षत्वात् पञ्चात्मकं न विद्यते ॥ ४ । २ । २ ॥ अर्थ—प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष भूतों का संयोग

प्रत्यक्ष न होने से एक २ में पांच २ का संयोग नहीं है अर्थात् पृथिवी जलादि पञ्चभूतात्मक नहीं हैं ।

(२८४) **प्रश्न**–पृथिव्यादि पञ्चभूतों को संयोगज मान कर पञ्चात्मक मानने में क्या हानि है ? (उत्तर) गुणान्तराऽभावाच्च । ४ । २ । ३ ॥ अर्थ–पृथिव्यादि में अन्य गुणों का अभाव होने से पञ्चभूतों को न संयोगज मान सकते हैं न पञ्चात्मक । और न (त्र्यात्मकम् ॥४ । २ ४॥ अर्थ—त्र्यात्मक भी नहीं है क्योंकि पृथिवी जल अग्नि इन तीनों के गुण पृथिव्यादि किसी एक द्रव्य में नहीं होते ।

(२८५) **प्रश्न**–यदि पृथिव्यादि में अन्य द्रव्यों के गुण नहीं होते तो पृथ्वी में पानी का शीतत्व और अग्नि का उष्णत्व और वायु का स्पर्शत्व गुण है सो कैसे ? (उत्तर) पृथिव्यादि में अन्य द्रव्यों के जो गुण पाये जाते हैं उसका कारण अणुसंयोगस्त्वऽप्रतिषिद्ध ।४ । २ । ५ । अर्थ–अणुओं का संयोग है पूर्वोक्त सूत्रों में अणु के संयोग का निषेध नहीं किया है अतः हमारे मत में कोई दोष नहीं॥

(२८६) **प्रश्न**—सृष्टि के आरम्भ में साङ्कल्पिक अयोनिज सृष्टि के होने का क्या कारण ? (उत्तर) अनियत दिग्देश पूर्वकृत्वात् ।४। २।७। अर्थ–दिशा और देश पहिले नियत न होने से सर्गारम्भ में परमात्मा ने सृष्टि को सङ्कल्प मात्रसे उत्पन्न किया अतः साङ्कल्पिक सृष्टि कही गई क्योंकि आदि सृष्टि में प्राणियों की कोई योनि किसी देश वा दिशा में नहीं थी और प्रकृतिके जड़ होने से प्रकृति से सृष्ट्युत्पत्ति होना असम्भव है इसलिये परमात्मा के संकल्प से सृष्ट्युत्पत्ति का होना मानना ठीक है ।

(२८७) **प्रश्न**–यदि सृष्ट्युत्पत्ति परमात्मा के संकल्प मात्रसे हुई तो सब प्राणियों के शरीर आदि एक समान क्यों

नहीं हुये भिन्न २ होने का क्या कारण? (उ०) धर्म विशेषाच्च ४।२।८। अर्थ—धर्म और अधर्म के विशेष होने से सृष्टि भिन्न भिन्न रूप में हुई क्योंकि सर्व जीवों के धर्म और अधर्म भिन्न भिन्न हैं अतः आदि सृष्टि में स्व स्व धर्मानुसार फल प्राप्त्यर्थ शरीर भिन्न भिन्न पाये एवं सांख्य दर्शन अ० ६ सूत्र ४१ (कर्म वैचित्र्यात्सृष्टि वैचित्र्यम्) में भी कहा है कि कर्म की विचित्रता से सृष्टि विचित्र रूप होती है।

(२८८) प्रश्न—सर्गारम्भ में ऋषियों के अयोनिज होने का क्या प्रमाण ? (उत्तर) समाख्याभावाच्च। संज्ञाया आदित्वात् । सन्त्यऽयोनिजाः । वेद लिङ्गाच्च- ४ । २ । ९, १०,११,१२। अर्थ—ऋषियों के प्रसिद्ध नाम होने से भी उन सबों के शरीर अयोनिज सिद्ध होते हैं क्योंकि अग्नि वायु अंगिरादि नाम तो सुने जाते हैं परन्तु उनके माता पितादिकों के नाम का पता कुछ नहीं लगता। अतः सिद्ध होता है कि सर्गारम्भ में ऋषि लोग सांकल्पिक (अयोनिज) सृष्टि से उत्पन्न हुए। और वेद में भी अयोनिज सृष्युत्पत्ति के चिन्ह पाये जाते हैं यथा—तस्माद्यज्ञात सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् । पशूंस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान्ग्राम्याश्च ये । तस्माद्यज्ञात सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत । गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः । यजुर्वेद अ० ३१ मं०८ ॥ यत्परममवमंयच्च मध्यमं प्रजापतिः ससृजेविश्वरूपम् । कियतास्कम्भः प्रविवेश यत्र यत्र प्राविशत् कियत्तद्बभूव । अथर्व० कां० १० अनु० ४ मंत्र ८ देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्चये । उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रिताः ॥ अथर्व० कां० ११, अनु० २७ ॥

(यहां तक प्रश्नोत्तर द्वारा द्रव्यों की परीक्षा की गई अब गुण कर्मों की परीक्षा की जाती है जिसमें प्रथम कर्मों की परीक्षा प्रारम्भ करते हैं)

(२८९) प्रश्न—ग्रन्थस्थ संख्या (१३९) से आगे:—सू-

सल के वेग से हाथ उठता है परन्तु हाथ के साथ अन्यों के उठने का क्या कारण ? (उत्तर) आत्म कर्म हस्तसंयोगाच्च ५ । १।६। अर्थ—हस्त के संयोग और वेग से अन्य शरीरादि में कर्म होता है ।

(२९०)प्रश्न—मूसल के उठाने का कारण तो वेग है परन्तु नीचे गिरने का क्या कारण है और गिरते समय पूर्व पश्चिम दि दिशाओं में क्यों नहीं गिरता नीचे ही क्यों गिरता है ? (उत्तर) संयोगाभावे गुरुत्वात् पतनम् । नोदन वशेषाऽभावान्नोर्ध्वं न तिर्यग्गमनम् । ५।१।७,८ ॥ संयोग के अभाव में भारी होने से नीचे गिरता है और प्रयत्न के विशेष न होने से ऊपर पूर्व पश्चिमादि तिर्यग्गमन नहीं होता है ।

(२९१) प्रश्न—विशेषप्रेरणा व विशेष उछाल होने का क्या कारण ? (उत्तर) प्रयत्न विशेषान्नोदनविशेषः ॥ नोदनविशेषा दुदसन विशेषः ॥ ५।१।९।१०। ॥ अर्थ—विशेष प्रयत्न से विशेष प्रेरणा और विशेष प्रेरणा से विशेष उछलना होता है ।

(२९२)प्रश्न—विशेषप्रेरणा के बिना वा प्रेरणा मात्र से (जैसे बालकों के हस्त पादादिका हिलना) जो कार्य होता है उसका क्या हेतु ? (उत्तर) हस्तकर्मणादारक ॥ कर्म व्याख्यातम् ॥ तथा दग्धस्य विष्फोटने ॥ ५।१।११। १२॥ अर्थ—हस्त क्रिया से बालकों के कम्पाय मानादि की क्रिया कही गई है । एवं जलाई हुई वस्तु के फाड़ने में भी जानना अर्थात् जली हुई वस्तु बिना विशेष प्रयत्न के ही फट जाती है । इस कारण साधारण प्रयत्न है ।

(२९३)प्रश्न—तृणादि के हिलने व चुम्बक पत्थरादि के साथ लोहे की सुई के चलने का क्या कारण ? (उत्तर) तृणे कर्म वायु संयोगात् ॥ मणि गमनं सूच्यभि सर्पणं मरु-

ष्ट कारणम् ॥ ५ । १ । १४ । १५ अर्थ—तृण में कम्पाय मा
नादि क्रिया वायु के संयोग से होती है और मणि व चु
म्बक पत्थरादि के साथ सुई के गमन का कारण अदृष्ट है ।
अर्थात् चुम्बक स्वाकर्षण से लोहे को खींचता है एव मणि
भी तृण को खींचती है ।

(२९४) प्रश्न—धनुष से छूटे हुये बाण में गिरने तक
बीच में अनेक जो कर्म हो जाते हैं उनका क्या कारण ?
(उत्तर) इषावयुगपत् संयोग विशेषाः कर्मान्यत्वे हेतुः ।
नोदनादाद्यमिषोः कर्म तत्कर्म कारिताच्च संस्काराद्तरं त-
थोत्तर मुत्तरं च । संस्काराभावे गुरुत्वात् पतनम् ।५ । १। १६
१७ । १८ अर्थ—धनुष से छूटे हुये बाण के अनेक समयों में
अनेक संयोग होने से अन्य कर्म बीच में उत्पन्न होजाते हैं।
१६ । प्रेरणा से बाण का प्रथम कर्म प्रारम्भ होता है और
उस कर्म कारित व संस्कार से उत्तरोत्तर कर्म उत्पन्न होते
हैं । जैसे छोड़े हुये बाण का प्रथम प्रेरणा कारण हुआ प-
श्चात् अन्यों का संयोग तदुपरान्त उत्तरोत्तर कर्मों का का-
रण उनके पीछे के कर्म होते हैं । १७ । परन्तु संस्कार के अ-
भाव में गुरुत्व होने से बाण नीचे गिर जाता है । १८ ॥

(२९५) प्रश्न पृथिवी के हिलने अर्थात् भूकम्पादि
होने का क्या कारण है ? (उत्तर) नोदनाभिघातात्संयुक्त
संयोगाच्च पृथिव्यां कर्म । ५ । २ । १ । अर्थ—प्रेरणा के अ-
भिघात और संयुक्त पदार्थों के साथ मेल होने से पृथिवीमें
गमनादि क्रिया होती है ।

(२९६) प्रश्न—प्रेरणा के विना जो भूकम्प होता है
उसका क्या कारण ? (उत्तर) तद्विशेषाऽदृष्टकारितम् ।
५ । २ । २ अर्थ—भूकम्पादि पृथिवी की विशेषता से
होता है इस का कारण अदृष्ट है ।

(२९७) प्रश्न—पानी नीचे क्यों गिरता है और गिरकर बहता है सो क्यों? (उत्तर) अपांसंयोगाभावे गुरुत्वात् पतनम् । द्रवत्वात् स्यन्दनम् । ५ । २ । ३,४ । अर्थ—जलों में संयोग का अभाव होने पर भारी होने से नीचे गिरता है और द्रवत्व होने से बहता है ।

(२९८) प्रश्न—समुद्रादि के जलों के ऊपर जाने का क्या कारण ? (उत्तर) नाडय वायु संयोगादारोहणम् । ५ । २ । ५ । अर्थ— सूर्य की किरण और वायु के संयोग से जल ऊपर को चढ़ता है ।

(२९९) प्रश्न— सूर्य के किरणादि के विना ही जल ऊपर को जो चढ़ता है उसका क्या कारण ? (उत्तर) नोदना पीडनात् संयुक्त संयोगाच्च । वृक्षाभिसर्पण मित्य दृष्ट कारितम् । ५ । २ । ६ । ७ । अर्थ—प्रेरणा व पीड़न तथा संयुक्त संयोग के होने से जल ऊपर को चढ़ता है । ६ । और वृक्ष के मूल में दिया हुआ जल वृक्ष के ऊपर शाखादिकों में जो जाता है उसका कारण अदृष्ट शक्ति है । ७ ।

(३००) प्रश्न—जल के जमने व पिघलने का क्या हेतु है ? (उत्तर) अपांसंघातो विलयनञ्च तेजः संयोगात् । तत्र विस्फूर्जथुलिङ्गम् । ५ । २ । ८,९ ।

अर्थ—तेज के संयोग से जलका जमना व पिघलना होता है । ८ । और अन्तरिक्षस्थ जल के जमाव में विद्युत् का चमकना व शब्द होना आदि द्रव्यरूप तेज का (लिङ्ग) चिन्ह है । अर्थात् दिव्य तेज के कारण जल जम कर कठिन पाषाणवत् हो जाता है और वही जल लौकिक तेज के संयोगसे पिघलकर पुनः अपनी जल रूपावस्था में आजाताहै । और (वैदिकञ्च ।५।२।१०) एवं वेद का भी सिद्धान्त है । अग्ने गर्भो अपामसि । यजु० ।१२।३१।

(३०१) **प्रश्न**—विजुली की चमक का क्या कारण है ? (उत्तर) अपांसंयोगाद्विभागाच्चस्तनयित्नोः । ५ । २ । ११ ।

अर्थ—आकाश में जलोंके संयोग से विद्युत् की उत्पत्ति और चमक तथा कड़क होता है ।

(३०२) **प्रश्न**—अग्नि वायु में क्रियोत्पत्ति होने का क्या कारण ? (उत्तर) पृथिवी कर्मणा तेजः कर्म वायु कर्मैव व्याख्यातम् ।५।२।१२॥ अर्थ—अग्नि और वायु के क्रिया का वर्णन पृथिवी की क्रिया के साथ किया गया है ।

(३०३) **प्रश्न**-अग्नि वायु और मन के अदृश्य कर्म का क्या कारण ? (उत्तर) अग्ने रूर्ध्वं ज्वलनं वायोस्तिर्यक् पवनमणुनां मनसश्चाद्यं कर्मादृष्ट कारितम् ॥ ५ । २ । १३ ॥

अर्थ—अग्नि का ऊर्ध्व ज्वलन और वायु का तिर्यक् गमन अणुवों और वायु के आदि कर्म का कारण अदृष्ट (स्वभाव) है और (हस्तकर्मणा मनसःकर्म व्याख्यातम् ।५। २। १४ ॥) हाथ के कर्म के साथ मन के कर्म का वर्णन हो चुका है अर्थात् जैसे जीवके प्रयत्न से हाथ काम करता है एवं मन भी ।

(३०४) **प्रश्न**—सुख दुःख कैसे होते हैं ? (उत्तर) आत्मेन्द्रियमनोर्थसन्निकर्षात् सुख दुःखे । ५ । २ । १५ । अर्थ—जीवात्मा, इन्द्रिय, मन और विषयों के सन्निकर्ष से सुख व दुःख होते हैं ।

(३०५) **प्रश्न**—मन की अदृष्ट क्रियायें कौन हैं ? (उत्तर) अपसर्पण मुपसर्पण मशितपीतसंयोगाः कार्यान्तर संयोगाश्चेत्य दृष्ट कारितानि । ५ । २ । १७ । अर्थ— मृत्युकाल में मन का शरीर से बाहर निकलना और शरीरोत्पत्ति में प्रवेश करना खान पान के संयोग से पुष्ट होना और अन्यान्य

कार्यों में लगना ये सब क्रियायें अदृष्ट (पूर्वपुण्यापुण्यकृत) कर्म से प्राप्त होती हैं।

(३०६) **प्रश्न**—अन्धकार किस को कहते हैं? (उत्तर) द्रव्य गुण कर्म निष्पत्ति वैधर्म्याद्भावस्तमः। तेजसो द्रव्यान्तरेणावरणाच्च। ५।२।१९।२०। अर्थ—द्रव्य, गुण, कर्मों के निष्पत्ति वैधर्म्य से प्रकाश का अभाव होना अन्धकार होता है तथा तेज के अन्य द्रव्यों का आच्छादन होने से भी अन्धकार होता है।

(३०७) **प्रश्न**—कौन कौन पदार्थ क्रिया रहित हैं। (उत्तर) दिक्कालावाकाशं च क्रियावद्वैधर्म्यान्निष्क्रियाणि ॥ एतेन कर्माणि गुणाश्च व्याख्यातः ॥ ५।२।२१।२२॥ अर्थ—क्रिया के वैधर्म्य से दिशा काल और आकाश निष्क्रिय क्रिया रहित हैं एवं गुण कर्म भी अर्थात् जितने क्रियावान् पदार्थ हैं वे सब मूर्तिमान् हैं परन्तु इनके विरुद्ध दिशा कालादि अमूर्तिमान् हैं अतः क्रियावान् नहीं।

(३०८) **प्रश्न**—गुण और कर्मों का मूर्तिमान् द्रव्यों के साथ जब कि समवाय सम्बन्ध है तो उनमें क्रिया क्यों नहीं? (उत्तर) निष्क्रियाणां समवायः कर्मभ्योनिषिद्धः॥ ५।२।२३॥

अर्थ—क्रिया रहित गुण कर्मों का समवाय सम्बन्ध कर्मों से निषिद्ध है।

(३०९) **प्रश्न**—यदि गुण कर्म दोनों क्रिया रहित हैं तो गुणों से गुण और कर्मों से कर्मोत्पत्ति कैसे? (उत्तर) कारणत्वऽसमवायिनो गुणाः ॥ ५। २। २४ ॥ अर्थ—कर्मों के कारणत्व से गुण असमवायि कारण है।

(३१०) **प्रश्न**—दिशा और काल क्रिया युक्त देखे जाते हैं अतः ये निष्क्रिय कैसे? (उत्तर) गुणैर्दिग्व्याख्याता ॥

कारणेनकालः ॥ १ । २ । २५ । २६ ॥ अर्थ—जिस प्रकार गुरुत्वादि गुण अमूर्त होने से क्रिया के समवायि कारण नहीं है एवं दिशादि क्रिया का समवायि कारण नहीं है और निमित्त कारण के होने से काल क्रिया का आधार है नकि समवायि कारण। दिशा और काल की परीक्षा के बाद अब वेद प्रमाण्य है वा नहीं इस की परीक्षा करते हैं।

(३११) प्रश्न—वेद में वाक्य रचना किस प्रकार है (उत्तर) बुद्धि पूर्वावाक्यकृतिर्वेदे ॥ ६ । १ । १ ॥ अर्थ—वेद में वाक्य रचना ज्ञान पूर्वक है अर्थात् वेद में ऐसा कोई वाक्य नहीं है जो बुद्धि के विरुद्ध हो।

(३१२) प्रश्न—वेद की ज्ञानपूर्वक वाक्य रचना में क्या प्रमाण (उत्तर) ब्राह्मणे संज्ञा कर्म सिद्धि लिङ्गम् ॥ बुद्धि पूर्वा ददातिः ॥ तथा प्रतिगृहः ॥ आत्मान्तर गुणानां मात्मान्तरे-ऽकारणत्वात् ॥ ६ । १ । २ । ३ । ४ । ५ ॥ अर्थ—ब्राह्मण ग्रन्थमें संज्ञा कर्म वेद के ज्ञान पूर्वकत्व रचना की सिद्धिका चिन्ह है अर्थात् वैदिक पदार्थों की संज्ञानुसार ब्राह्मणादि ग्रन्थों में जो २ उनके कर्म बतलाये हैं तदनुसार फल का होना उक्त विषय की सिद्धि का प्रमाण है ॥ २ ॥ वेद में दान देना व लेना भी ज्ञान युक्त बतलाया है अर्थात् दान दाता को देने का तथा गृहीता को लेने का फल मिलना चाहिये, यह आदेश वेद के ज्ञान पूर्वकत्व रचना में प्रमाण है ॥

(३१३) दान का निरूपण—तद् दुष्ट भोजने न विद्यते ॥ तस्य समभिव्याहारतो दोषः ॥ तददुष्टेन विद्यते ॥ पुनर्विशिष्टे प्रवृत्तिः ॥ समे हीने वा प्रवृत्तिः ॥ एतेनहीन सम विशिष्ट धार्मिकेभ्यः— परस्वादानं व्याख्यातम् ॥ तथा विरुद्धानां त्यागः ॥ हीने परे त्यागः ॥ समे आत्म त्यागः

परत्या गो वा ॥ विशिष्ट आत्म त्याग इति ॥ ६।१।६, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६ ॥ अर्थ-दुष्ट भोजन के देने वा निषिद्ध कर्म करने वाले दुष्ट जनों को भोजन कराने में दाता को दान का फल नहीं होता ॥ ६ ॥ फल ही नहीं किन्तु दुष्ट अर्थात् निषिद्ध भोजन खाने खिलाने में पाप होता है परन्तु सत्पात्र को अच्छे दान में पाप नहीं लगता अतः उत्तम भोजन के करने कराने में प्रवृत्ति होनी चाहिये ॥ ८ ॥ सत्पात्रों के अभाव में अपने बराबर वा हीन ब्राह्मणादिकों को दान देने में प्रवृत्ति होनी चाहिये ९।१०।११॥ इससे हीन (सम) बराबर और उत्तम श्रेष्ठ धार्मिक लोगों से प्रतिग्रह आदि लेना चाहिये ॥ १२ ॥ एवं धर्म के विरुद्ध पुरुषों का धन त्याग देना चाहिये ॥ १३ ॥ और धर्महीन लोगों का प्रतिग्रह न लेवें । १४॥ तथा अपने समधार्मिक हो तो दान लेने वाला दान के वस्तु को परित्याग करदे वा दान देने वाला दान देना छोड़दे ॥ १५ ॥ यदि दान कर्ता अपने से श्रेष्ठ धर्मात्मा हो तो दान गृहीता स्वयं दान त्यागदेवै ॥१६॥

(३१४) वैदिक दृष्टादृष्ट कर्मों का प्रयोजन-

दृष्टादृष्टप्रयोजनानां दृष्टाभावे प्रयोजनमभ्युदयाय ॥६।२।१॥ अर्थ-दृष्ट अदृष्ट का प्रयोजन दृष्ट केअभाव में करना अभ्युदय के लिए है ।

(३१५) अदृष्ट फल के कर्मों का निरूपण-

अभिषेचनोपवास, ब्रह्मचर्य गुरुकुलवास, वानप्रस्थ, यज्ञ, दान, प्रोक्षण, दिङ् , नक्षत्र, मन्त्र काल, नियमाश्च दृष्टाय ॥६।२।२। अर्थ-स्नान मन्त्र व औषधि पूर्वक करना, उपवास, ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, यज्ञादिकर्म सत्पात्रों को दान, यज्ञादि पदार्थों को शुद्ध करना, (प्रोक्षण) यज्ञादि में नियत दिशाओं में

बैठना, शुभ नक्षत्रों में यज्ञादि कर्मों को करना, वैदिकमन्त्रों से शुभ समयमें अन्यान्य कर्मों को करना और इन कर्मों के करने के नियम ये सब अदृष्ट फल के कारण हैं और (चातुराश्रम्यमुपधा अनुपधाश्च ।३।) ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास इनचार आश्रमों के कर्मों को उपधा अनुपधाओं के सहित करना चाहिये ।

(३१६) उपधाऽनुपधा का निरूपण— भावदोष उपधाऽदोषोऽनुपधः ॥ ४ ॥ अर्थ—ईर्षा, द्वेष, प्रमाद, अश्रद्धा अहंकारादि से भाव में दोष होना उपधा और भाव में दोष न होना अनुपधा कहाती है ।

(३१७) शुचि और अशुचि का निरूपण— यदिष्ट रूप रस गन्ध स्पर्शं प्रोक्षित मभ्युक्षितञ्च तच्छुचि ॥५॥ अशुचीति शुचि प्रतिषेधः ॥ ६ ॥ अर्थान्त ञ्च ॥ ७ ॥ अर्थ—जो इष्ट रूप रस गन्ध स्पर्शवान् द्रव्य मन्त्र से शुद्ध किया और बिना मन्त्र के सञ्चत किया हुआ है वह शुद्ध है ॥ ५ ॥ और शुद्ध के जो विरुद्ध है वह अशुद्ध है ॥६॥ तथा जिस के लिये जो विधान किया गया हो तद्विरुद्ध करना भी अशुद्ध है ॥ ७ ॥

(३१८) शुभाशुभ भोजन का निरूपण— अयतस्यशुचि भोजनादभ्युदयो न विद्यते नियमाभावात् ॥ ८ ॥ विद्यतेवार्थान्तरत्व द् यतस्य ॥ ९ ॥ असति चाभाव त् ॥ १० ॥ अर्थः—निकृष्ट कर्म करने वाले क्रूर पुरषों का पवित्र भोजन भी करनेसे ऐहिक पारलौकिक सुख नहीं होता नियम के अभाव से अर्थात् जो लोग नियम के विरुद्ध हिंसादि दोष युक्त कर्म करते हैं उनका दिया शुद्धान्न भोजन भी हितकारी नहीं ॥८॥ एक पक्ष यह भी है कि नीच पुरषोंका

यदि अहिंसादि दोषों से रहित शुद्ध भोजन हो तो उसके भक्षण करने में कोई दोष नहीं ॥ ९ ॥ पवित्र भोजन जिसमें हिंसादि दोष न हों ऐसे भोजन के करने से कोई क्षति नहीं ॥ १० ॥

(३१९) राग द्वेश के कारण—सुखाद्रागः ॥११॥ तन्मयत्वाच्च ॥१२॥ अदृष्टाच्च ॥ १३ ॥ जातिविशेषाच्च ॥ १४ ॥

अर्थ—सुख से राग होता है ॥ ११ ॥ और निरंतर विषय भोगादि के सेवन करने से राग और द्वेष उत्पन्न होता है ॥ १२ ॥ अदृष्ट कर्मों से और जाति की विशेषता से (जैसे नकुल और सर्प का विरोध) भी राग द्वेष उत्पन्न होता है ॥ १३ ॥ १४ ॥

(३२०) प्रवृत्ति का निरूपण— इच्छा द्वेष पूर्विकाधर्माधर्मेप्रवृत्तिः ॥ १५ ॥ अर्थः—इच्छा द्वेष पूर्वक धर्म अधर्म में प्रवृत्ति होती है ।

(३२१)जन्म और मरण का हेतु—तत् संयोगो विभागः ॥ १६ ॥

अर्थ–पूर्वोक्त सूत्रानुसार धर्माधर्म की प्रवृत्ति से (संयोग) जन्म और (विभाग) मरण होते हैं ।

(३२२) मोक्ष प्राप्ति के साधन— आत्म कर्मसु मोक्षो व्याख्यातः ॥१७॥ अर्थ—श्रवण मनन निदिध्यासन वैराग्यादि आध्यात्मिक कर्मों के करने पर मोक्ष का होना कथन किया गया है ।

(३२३) पृथिव्यादि द्रव्यों का नित्य और अनित्यत्ववर्णन—उक्ता गुणाः । ७।१।१। पृथिव्यादि रूपरसगन्धस्पर्शाः द्रव्यानित्यत्वादनित्याश्च ।७।१।२। एतेन नित्येषु

नित्यत्वमुक्तम् ।३। अप्सु तेजसि वायौ च नित्यादृव्यनित्यत्वात् ॥४॥ अनित्येष्वनित्या द्रव्याऽनित्यत्वात् ॥५॥ कारण गुण पूर्वकाः पृथिव्यां पाकजाः ॥६॥ एक द्रव्यत्वात् ॥७॥ अणोर्महतश्चोपलब्ध्यनुपलब्धी नित्ये व्याख्याते ॥८॥ अर्थ—प्रथम द्रव्यों और कर्मों की परीक्षा की गई अब गुणों की परीक्षा करते हैं जो कि पूर्व में कहे हैं । १ । पृथिवी आदि द्रव्य अनित्य हैं अतः उनके गुण रूप रस गन्ध और स्पर्श भी अनित्य हैं और नित्य द्रव्यों में गुण नित्य भी है जैसे परमाणु नित्य होने से उसका गुण भी नित्य है ।२।३। द्रव्य की नित्यता से जल के परमाणुओं में रूप रस स्पर्श तेज के परमाणुओं में रूप स्पर्श और वायु के परमाणुओं में स्पर्श ये गुण नित्य हैं ॥४॥ और द्रव्यों की अनित्यता से अनित्य द्रव्यों में गुण अनित्य हैं ॥५॥ पृथिवी में पाकज, रूप, रस, स्पर्श गुण स्व स्व कारण के गुणों से उत्पन्न होते हैं ॥६॥ क्योंकि हर एक गुणों का एक ही द्रव्य होने से ॥७॥

(२२४) अणु और महत्व का विवरण—

अणोर्महतश्चोपलब्ध्यनुपलब्धी नित्येष्वाख्याते ॥ कारण बहुत्वाच्च ॥ अतो विपरीतमणु ॥ अणु महदितितस्मिन् विशेष भावाद् विशेषाऽभावाच्च ॥ एक कालत्वात् ॥ दृष्टान्ताच्च ॥७।१।१।८।९।१०।११।१२।१३॥ अर्थ—अणु और महत् की अनुपलब्धि और उपलब्धि नित्य कही गई है ॥८॥ बहुत कारणों के होने से महत् पदार्थ में महत्वपन हो जाता है ॥ ९ ॥ इससे विपरीत अणु पदार्थ में महत्वपन नहीं होता ॥१०॥अणु महत् यह व्यवहार उस पदार्थ में विशेष होने से और विशेष न होने से भी होता है ॥ ११ ॥ एक काल में होने से ॥ जिस काल में हम आंवले को बिल्व से छोटा कहते हैं उसी एक काल में उसी आंवले को

गेहूं से बड़ा भी कहते हैं ॥ १२ ॥ और दृष्टान्त से भी सिद्ध है ॥ जैसे गौ हाथी से छोटी और बकरी से बड़ी होती है ॥१३॥

(३२५) प्रश्न—अणुत्व का अणुत्व और महत्व का महत्व होता है वा नहीं ? (उत्तर) नहीं ॥

(३२६) अणुत्व में अणुत्व और महत्व में महत्व का निषेध—अणुत्व महत्वयो रणुत्व महत्वाऽभावः कर्म गुणैर्व्याख्यातः ॥७।१।१४॥ अर्थ—अणुत्व और महत्व का अन्य, अणत्व और महत्व नहीं होता यह कर्म और गुणों के व्याख्यान के साथ कहा गया है ॥ और (कर्मभिः कर्माणि गुणैश्च गुणा व्याख्याताः ॥७।१।१५॥) अर्थ—उत्क्षेपणादि कर्मों से कर्म और रूपादि गुणों से गुण कहे गये हैं ॥

(३२७) कर्मों व गुणों का अणुत्वमहत्वनिषेधः—अणुत्व महत्वाभ्यां कर्म गुणाश्च ॥७।१।१६॥ अर्थ—जैसे अणुत्व का अणुत्व महत्व का महत्व भीनहीं होता तदनुसार कर्मों व गुणों का अणुत्व महत्व नहीं होता ॥

(३२८) दीर्घत्व व ह्रस्वत्व का दीर्घत्व व ह्रस्वत्व निषेध—एतेन दीर्घत्व ह्रस्वत्वे व्याख्याते ॥७।१।१७॥ अर्थ—जिस प्रकार अणुत्व महत्व का अणुत्व महत्व नहीं होता एवम् दीर्घत्व व ह्रस्वत्व का दीर्घत्व ह्रस्वत्व नहीं होता ॥

(३२९) प्रश्न—अणुत्व महत्व व दीर्घत्व ह्रस्वत्व यह चारों नित्य हैं वा नहीं ? (उत्तर) अनित्येऽनित्यम् ॥ नित्ये नित्यम् ॥ नित्यं परिमण्डलम् ॥ ७।१।१८।१९।२०॥ अर्थ—अनित्य द्रव्य में चारों अनित्य और नित्य द्रव्य में नित्य होते हैं तथा परमाणु का परिमाणभी नित्य है ॥ १८।१९।२०॥

(३३०) **प्रश्न**–परमाणु में परिमाण है क्या– (उत्तर) अविद्या च विद्यालिङ्गम् ॥ ७ । १ । २१ ॥ अर्थ—अविद्या से विद्या जानी जाती है एवम् स्थूल पदार्थों के महत्व और दीर्घत्व परिमाण से परमाणु का अणुत्व और ह्रस्वत्व भी जाना जाता है ॥ २१॥

(३३१) आकाश व आत्मा का महत्व परिमाण–विभवान्महानाकाशस्तथा चात्मा ॥ ७ । १ । २२ ॥ अर्थ– सर्वव्यापक होने से आकाश और परमात्मा महत्व परिमाण युक्त है और (तद्भावादणुमनः ॥ ७ । १ । २३ ॥) अर्थ– सर्वव्यापक न होने से मन वाला जीवात्मा अणुत्व परिमाण युक्त है ॥

(३३२) दिशा और काल का विवरण— गुणै दिग्व्याख्याता ॥ कारणेन कालः ॥ ७ । १ । २४ । २५ ॥ अर्थ– गुणों के साथ दिशा का और कारणसे काल का व्याख्यान होचुका है ।

परिमाण की परीक्षा के बाद अब संख्या की परीक्षा की जाती है ॥

(३३३) संख्या का पृथक्त्व वर्णन— रूप रस गन्ध स्पर्श व्यतिरेका दर्थान्तरमेकत्वम् ॥ ७ । २ । १ ॥ अर्थ—रूप रस गन्ध स्पर्शादि से अतिरिक्त होने से एकत्वादि संख्या रूपादिगुणों से पृथक् अन्य वस्तु है । और (तथापृथक्त्वम्) ॥ ७ । २ । २ ॥ अर्थ—पृथक्त्व गुण भी एकत्व के समान होने से रूपादि से भिन्न है ।

(३३४) **प्रश्न**—एकत्व पृथक्त्वमें एकत्व पृथक्त्व होता है वा नहीं ? (उत्तर) एकत्वैक पृथक्त्व योरेकत्वैक पृथक्त्वा भावोऽणुत्व महत्वाभ्यां व्याख्यातः ॥ ७ । २ । ३ ॥

अर्थः—नहीं जिस प्रकार अणुत्व व महत्व नहीं होता वैसे ही एकत्व व पृथक्त्व में भी एकत्व व पृथक्त्व नहीं होता।

(३३५) **प्रश्न**—कर्मों व गुणों में एकत्व संख्या है वा नहीं ? (उत्तर) निःसंख्यत्वात्कर्म गुणानां सर्वैकत्वं न विद्यते ॥ ७ । २ । ४ । नहीं क्योंकि कर्म और गुण संख्या से रहित भिन्न पदार्थ है अतः इनमें एकत्व संख्या नहीं होती ।

(३३६) **प्रश्न**—यदि कर्मों व गुणों में एकत्व संख्या नहीं तो व्यवहार में क्यों माना जाता है (उत्तर) भ्रान्तं तत् ॥ ७ । २ । ५ । अर्थ— कर्मों व गुणों में एकत्व संख्या मानना भ्रान्ति है क्योंकि संख्या द्रव्यमात्र में रहती है । गुण कर्मों में नहीं ।

(३३७) **प्रश्न**—एकत्वाभावाद्भक्तिस्तु न विद्यते ॥ ७ । २ । ६ ॥ अर्थ–एकत्व संख्या नहीं होने से भक्ति (गौण धर्म का प्रयोग) नहीं हो सक्ता ? (उत्तर) कार्य कारणयोरेकत्वैक पृथक्त्वा भावादेकत्वैक पृथक्त्वं न विद्यते ॥ ७ । २ । ७ ॥ अर्थ—कार्य व कारण में एकत्व और एक पृथक्त्व का अभाव होने से एकत्व व एक पृथक्त्व नहीं होता । यह आवश्यक नहीं कि कार्य में एकत्व संख्या हो तो कारण में भी हो, और कारण में एकत्व संख्या हो तो कार्य में भी हो । एवं एक पृथक्त्व को भी जानो ॥ इसी प्रकार (एतदनित्ययोर्व्याख्यातम् ॥ ७।२।८ ॥) अर्थ–यह नियम अनित्य एकत्व और एक पृथक्त्व में व्याख्यात है ।

संख्या की परीक्षा के बाद अब संयोग की परीक्षा करते हैं ।

(३३८) **संयोग के भेद**—अन्यतर कर्मज उभय कर्म-

जः संयोगजश्च संयोगः ॥ ७।२।९ ॥ अर्थ—संयोग तीन प्रकार का होता है, अन्यतर कर्मज, उभय कर्मज, और संयोगज।

(३३९) विभाग के भेद—एतेनविभागो व्याख्यातः॥ ७।२।१० ॥ अर्थ—संयोग के सदृश विभाग भी तीन प्रकार का है ॥ इन दोनों विषयों का विशेष वर्णन प्रथम भाग के १४।१५। पृष्ट पर किया गया है।

(३४०) संयोग विभाग में संयोग विभागत्व का निषेध—संयोग विभागयोः संयोग विभागाभावोऽणुत्व महत्त्वाभ्यां व्याख्यातः ॥ ७ । २ । ११ ॥ अर्थ—जिस प्रकार अणुत्व महत्त्व में अणुत्व महत्त्व नहीं होता तदनुसार संयोग विभाग में संयोग विभाग नहीं होता।

(३४१) कर्मों में कर्म व गुणों में गुण का निषेध—कर्मभिः कर्माणि गुणैश्च गुणा अणुत्व महत्वाभ्यामिति ॥७ । २ । १२॥ अर्थ—कर्मों से कर्म व गुणों से गुण उत्पन्न तो होते हैं परन्तु अणुत्व महत्त्व के सदृश कर्मों में कर्म व गुणों में गुण नहीं होते ॥

(३४२) कार्य कारण में संयोग विभाग का निषेध—युत सिद्ध्यभावात्कार्यकारणयोः संयोग विभागो न विद्यते ॥ गुणत्वात् ॥ ७ । २ । १३ । १४ अर्थ—मिले हुए पदार्थ का नाम युतसिद्धि है उस युतसिद्धि के न होने से कार्य कारण में भी संयोग विभाग नहीं होता ॥ तथा संयोग गुण होने से द्रव्य और गुण में संयोग व विभाग नहीं होता।

(३४३) शब्द और अर्थ में संयोग सम्बन्ध का निषेध—गुणोऽपि विभाव्यते ॥ निष्क्रियत्वात् ॥ असति

नास्तीति च प्रयोगात् शब्दार्थावसम्बन्धौ ॥ ७ । २ । १५ ।१६ । १७ ॥ अर्थ— गुणभी शब्द से कहा जाता है अर्थात् जैसे घट आदि शब्दों से उनके अर्थों का बोध होता है वैसे ही रूपादि शब्दों से उनके गुणों का ग्रहण किया जाता है। । अतः शब्द और गुण का संयोग सम्बन्ध नहीं। क्रिया रहित तथा असत् पदार्थ में (नहीं हैं) इस प्रयोग के दर्शन से भी शब्द और अर्थ का संयोग सम्बन्ध नहीं है ॥

(३४४) **प्रश्न**—यदि संयोग सम्बन्ध नहीं तो क्या समवाय सम्बन्ध भी नहीं है? (उत्तर)संयोगिनो दण्डात्, समावायिनो विशेषाच्च ॥ ७।२।१९ ॥ अर्थ—जैसे दण्डी पुरुष का दण्ड से तथा मनुष्य का हाथ से संयोग व समवाय जो सम्बन्ध है वैसे शब्द व अर्थों का सम्बन्ध नहीं है अतः शब्द व अर्थों में न संयोग न समवाय सम्बन्ध है।

(३४५) **प्रश्न**—यदि दोनों सम्बन्ध नहीं हैं तो शब्द से अर्थ का बोध कैसा होता है? (उत्तर) सामयिकः शब्दादर्थ प्रत्ययः ॥ ७।२।२०॥ अर्थ–शब्द से अर्थ का जो ज्ञान होता है वह समय के अनुसार संकेत से होता है ॥

अब परत्व और अपरत्व की परीक्षाकी जाती है।

(३४६) **परत्वा परत्व का निरूपण**—एक दिक्काम्यामेक कालाभ्यांसन्निकृष्ट विप्रकृष्टाभ्यां परमपरञ्च ॥७।२।२१॥

अर्थ–एक दिशा और एक काल तथा समीप और दूर से परत्व और अपरत्व होता है जैसे काशी की अपेक्षा प्रयाग पर है और दिल्ली अपर है यह दैशिक परत्वापरत्व है और चैत्रसे वैशाख पर है व ज्येष्ठ अपर है यह कालिक परत्वापरत्व है ॥

(३४७) **परत्वा परत्वहोने के कारण**— कारण

परत्वात्कारणापरत्वाच्च ॥ ७।२।२२ ॥ अर्थ–कारण के समीप होने से परत्व और कारण के दूर होने से अपर होता है ॥

(३४८) परत्वापरत्व का निषेध—परत्वा परत्वयोः परत्वाऽपरत्वा भावोऽणुत्व महत्त्वाभ्यां व्याख्यातः ॥ ७।२।२३॥ अर्थ-परत्वऔर अपरत्वका अन्य परत्व और अपरत्व न होनाअणुत्व और महत्त्व के साथ कथन किया गया है॥ और "कर्मभिः कर्माणि गुणैर्गुणाः" ॥७।२।२४॥अर्थ-कर्मों से कर्म गुणों से गुण कहा गया है ॥

अब परत्वापरत्व की परीक्षा के पश्चात् बुद्धि की परीक्षा की जाती है।

(३४९) ज्ञानोत्पत्ति का विवरण–द्रव्येषुज्ञानं व्याख्यातम् ॥८।१।१॥ तत्रात्मानश्चाप्रत्यक्षे ॥ ८।१।२ ॥ ज्ञान निर्देशे ज्ञान निष्पत्ति विधिरुक्तः ॥ ८।१।३॥ गुण कर्मसु सन्निकृष्टेषु ज्ञान निष्पत्तेर्द्रव्यंकारणम् ॥ ८।१।४॥ सामान्य विशेषेषु सामान्य विशेषाऽभावात्ततएवज्ञानम् ॥८।१।५॥ सामान्य विशेषापेक्षं द्रव्य गुण कर्मसु ॥८।१।६॥ द्रव्ये द्रव्य गुण कर्मापेक्षम् ॥ ८।१।७॥ अर्थ–द्रव्यों के विषय में ज्ञान की व्याख्या की गई है।१। पृथिव्यादि द्रव्यों में आत्मा (जीवात्मा और परमात्मा) और मन तथा वायु, आकाश, काल, दिशा और परमाणु ये प्रत्यक्ष नहीं है केवल पृथिवी जल अग्नि प्रत्यक्ष हैं। ज्ञान निर्देश में ज्ञान प्राप्ति की विधि तृतीय अध्याय आह्निक एक के १९ सूत्र में बतलाई गई है।२।३॥ इन्द्रियों के समीप गुणों और कर्मों में ज्ञानोत्पत्ति का कारण द्रव्य है।४। सामान्य और विशेषों में सामान्य और विशेष का अभाव होने से उनसे ही ज्ञान

होता है ॥ ५ ॥ द्रव्यों गुणों और कर्मों के विषय में सामान्य विशेष की अपेक्षा से ज्ञान उत्पन्न होता है ॥ ६ ॥ द्रव्य विषय में द्रव्य गुण कर्म की अपेक्षा वाला ज्ञान उत्पन्न होता है परन्तु (गुण कर्मसु गुण कर्माभावाद्गुण कर्मापेक्षं न विद्यते ॥८।१।८॥) अर्थ–गुणमें गुण का कर्म में कर्म का अभाव होने से गुण वा कर्म का ज्ञान गुण कर्मापेक्ष नहीं होता । जैसे (समवायिनःश्वैत्याच्छ्वैत्य बुद्धेश्चश्वेते बुद्धिः ते एते कार्यकारण भूते ॥ ८ । १ । ९ ॥) अर्थ–समवायी द्रव्यके श्वेत होने से और श्वेतत्व के ज्ञान से श्वेत द्रव्य में ज्ञान उत्पन्न होता है, वे दोनों ये कार्य रूप और कारण रूप ज्ञान हैं॥ परन्तु (द्रव्येष्वनितरेतरकारणाः ॥ ८। १ । १० ॥) अर्थ–द्रव्यों में जो अनेक ज्ञान उत्पन्न होते हैं वे एक दूसरे के कारण नहीं होते क्योंकि (कारणाऽयौग पद्यात्कारण क्रमाच्च घट पटादि बुद्धीनां क्रमो, न हेतु फल भावात् ॥ ८ । १ । ११ ॥ अर्थ–ज्ञान के कारण एक साथ उत्पन्न न होने से और कारणों के क्रम से घट पट आदि ज्ञानों में क्रम है नकि कारण का फल होने से ।

(३५०) प्रश्न–अयमेवत्वया कृतं भोजयैनमिति बुध्यपेक्षम् ॥ ८ । २ । १॥ अर्थ–यह है वह है तूने कार्य किया इस को भोजन कराओ इत्यादि में तो प्रत्यक्ष ज्ञान हो सकता है परन्तु "वह वहां है" इत्यादि परोक्षवर्ती पदार्थ में प्रत्यक्ष ज्ञान कैसे होगा ? (उत्तर) दृष्टेषु भावाद्दृष्टेष्व भावात ॥ ८ । २ । २ ॥ अर्थ—दृष्ट पदार्थ में होने और अदृष्ट पदार्थों में न होने से परोक्ष सम्बन्धी "वह वहां है" विषयों में भी प्रत्यक्ष ज्ञान होगा क्योंकि जिसको प्रत्यक्ष किया ही नहीं है उसको यह वह नहीं कह सक्ते ।।

(३५१) अर्थ शब्द का प्रयोग—अर्थ इतिद्रव्य गुण कर्मसु ॥ ८ । २।३॥ अर्थ—इस शास्त्र में अर्थ शब्द से द्रव्य गुण व कर्मों का ग्रहण होता है ।

(३५२) द्रव्यों का पंचात्मकत्व विवरण—द्रव्येषु पञ्चात्मकत्वम् प्रतिषिद्धम् ॥ भूयस्त्वाद् गन्धवत्त्वाच्च पृथिवी गन्धज्ञानेप्रकृतिः ॥ तथापस्तेजो वायुश्च रस रूपस्पर्श विशेषात् ॥८।२। ४ ।५ ।६॥ अर्थ–कार्य द्रव्यों में पञ्चात्मकत्व होना सिद्ध है ॥ ४ ॥ क्योंकि बहुत होने और गन्धयुक्त होने से पृथिवीमात्र गन्ध ज्ञान इन्द्रियमें उपादान कारण है॥५॥ एवं समान होने से रस रूपस्पर्श ज्ञानेन्द्रियोंमें क्रमशः जल, तेज, और वायु उपादान कारण है ॥ ६ ॥

(३५३) प्रश्न–पृथिव्यादि कार्य द्रव्य उत्पत्ति से पूर्व थे वा नहीं ? (उत्तर) क्रिया गुण व्यपदेशाभावात् प्रागसत् ॥ सदसत् ॥ ९ । १ । १ । २ ॥ अर्थ–क्रिया और गुण का व्यवहार न होने से उत्पत्ति के पूर्व नहीं थे ॥ १ ॥ क्योंकि कारण रूप से भाव और कार्य रूप से उत्पत्ति के पूर्व अभाव होता है ॥२॥

(३५४)प्रश्न–यदि उत्पत्ति से पूर्व कारण रूप में स्थित था तो उसकी उत्पत्ति क्यों न मानी जावे ? (उत्तर) सदऽसत् ॥ ९ । १ । २ ॥ असतः क्रिया गुण व्यपदेशाभावादर्थान्तरम् ॥ ९ । १ । ३ ॥ अर्थ–क्रिया गुण व्यवहारादि के अभाव से असत्की अपेक्षा (सत्) उत्पन्न हुआ पदार्थ अन्य है ॥ २ ॥

(३५५) सदसत् का विवरण—सद्वास-त् ॥ यद्वान्यदसदतत्सदसत् ॥ ९। १ । ४ । ५ ॥ अर्थ—सत् (कार्य पदार्थ) भी नाश के पश्चात् सत् नहीं रहता ॥४॥ और जो पदार्थ उत्पत्ति के पूर्व असत् और उत्पन्न होने

पर सत् हैं वे सदऽसत् तथा जो कभी सत् नहीं हैं वे असत् कहाते हैं ॥ ५ ॥

(३५६) प्रत्यक्ष ज्ञान का विवरण—

असदिति भूत प्रत्यक्षाभावात् भूतस्मृतेर्विरोधि प्रत्यक्षवत् ॥ तथाऽभावेभावप्रत्यक्षत्वाच्च ॥ एतेना घटोऽगौरधर्मश्चव्याख्यातः ॥ अभूतं नास्तीत्यनर्थान्तरम् ॥ नास्ति घटो गेहे इति सतो घटस्य गेह संसर्ग प्रतिषेधः ॥ ९ । १ । ६ । ७ । ८ । ९ । १० ॥ अर्थ—असत् है यह ज्ञान भूत प्रत्यक्ष के अभाव से और भूतस्मृति के होने से विरोधी का प्रत्यक्ष होता है ॥ ६ ॥ एवं अभाव में भी भाव के प्रत्यक्ष होने से ज्ञान होता है जैसे घट के नष्ट होजाने पर मृत्तिका के देखने से पूर्व प्रत्यक्षी कृत घट का ज्ञान होता है ॥ ७ ॥ इससे घट का अभाव अघट गौ के अभाव अगौ और धर्म के अभाव अधर्म का कथन किया गया है ॥ ८ ॥ अभूत और नास्ति ये दोनों शब्द एकही अर्थ के वाचक हैं ॥ जैसे घर में घट नहीं है यह कथन होते हुये घट का घर में न होना बतलाया है ॥९।१०॥

(३५७) मानसिक प्रत्यक्ष का वर्णन—

आत्मन्यात्ममनसोः संयोग विशेषादात्मप्रत्यक्षम् ॥ तथा द्रव्यान्तरेषु प्रत्यक्षत्वम् ॥ ९ । १ । ११ । १२ ॥ अर्थ—आत्मा और मनके संयोग विशेष से आत्मा में स्वरूप तथा ब्रह्म का प्रत्यक्ष होता है एवं अन्य सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रकृती पर्यन्त द्रव्यों में प्रत्यक्ष ज्ञान होता है ॥ ११ । १२ ॥

(३५८) प्रश्न—किन २ योगियों को आत्मस्वरूप का प्रत्यक्ष होता है ? असमाहितान्तः करणाऽपसंहृत समाधयस्तेषाञ्च ॥ तत्समवायात्कर्मगुणेषु ॥ आत्म समवाया

दात्मगुणेषु ॥ ९ । १ । १३ । १४ । १५ ॥ अर्थ—जो कभी २ समादि लगाकर अन्तःकरण की शान्ति करते हैं और जो समाधिस्थ होकर अपने-अन्तःकरण की शान्ति करचुके हैं उन योगियों को आत्मा का प्रत्यक्ष होता है ॥ १३ ॥ और जिन का प्रत्यक्ष होता है उनके समवाय सम्बन्ध से उन द्रव्यों के गुण कर्म का प्रत्यक्ष होता है तथा जीवात्मा के साथ समवाय सम्बन्ध से उसके चेतन सुख दुःखादि गुणों का भी प्रत्यक्ष होता है ॥ १४ । १५ ॥

प्रत्यक्ष ज्ञान की परीक्षा के पश्चात् अब लिङ्ग ज्ञान की परीक्षा करते हैं ॥

(३५९) लिंग ज्ञान का निरूपण—प्रथम भाग के १९ वें पृष्ट पर किया गया है ॥ शेष और यहां लिखा जाता है ॥ अस्येदं कार्यकारण सम्बन्धश्चावयवाद्भवति ॥९ ।२।२ ॥ अर्थ—इस लिङ्गी का यह लिङ्ग है और कार्य कारण सम्बन्ध है यह ज्ञान अवयव से होता है ॥ २ ॥

(३६०) शब्द ज्ञान का विवरण—एतेन शाब्दं व्याख्यातम् ॥ ९ । २ । ३ ॥ अर्थ—जिस प्रकार लैङ्गिक ज्ञान की व्याख्या की गई है ॥ तदनुसार शब्द ज्ञान को भी समझो ॥

(३६१) हेत्वादि शब्द का विवरण—हेतु रपदेशो लिङ्ग प्रमाणं करणमित्यनर्थान्तरम् ॥ अस्येद मिति बुद्ध्या पेक्षितत्वात् ॥९।२।४।५॥ अर्थ—हेतु, अपदेश, लिङ्ग, प्रमाण और करण, ए सब एकार्थ वाची शब्द इस शास्त्र में माने गये हैं ॥ इस कार्य का यह कारण है यह बुद्धि की अपेक्षा कृत होने से हेतु आदि एकार्थक हैं ॥ ४ । ५ ॥